रामायण ग्रन्थों में भगवान् शिव

वर्तमान समय में अनेक रामायण ग्रन्थ उपलब्ध हैं। धार्मिक ग्रन्थों में रामायणों की संख्या सौ करोड़ बतायी गयी है क्योंकि प्रत्येक कल्प एवं प्रत्येक ब्रह्माण्ड में रामरूप से भगवान् विष्णु या महाविष्णु अवतरित हो लीलाएँ करते रहे हैं। इन लीलाओं की भिन्नता से ही अनेक रामायणों की रचना हुई। उदाहरण के लिये 'रामचरितमानस' में चार कल्प के रामों की मिली-जुली कथा है[1]। रामचरितमानस में कहा गया है-

नाना भाँति राम अवतारा। रामायन सत कोटि अपारा।। (बालकाण्ड 32 ख/3)

कलपभेद हरिचरित सुहाए। भाँति अनेक मुनीसन्ह गाए।। (बा. का. 32 ख/4)

पुनः- **राम जनम के हेतु अनेका। परम बिचित्र एक तें एका।।** (बा. का. 121/1)

अद्भुत रामायण(1/3, 4) में कहा गया है कि सौ करोड़ में से 25000 रामायण पृथ्वी लोक में प्रचलित हैं शेष ब्रह्म आदि लोकों में पितर, देवता आदि लोग श्रवण करते हैं।

आजकल मान्यता प्राप्त सभी रामायणों में बाल्मीकीय रामायण सबसे प्राचीन तथा तुलसीदास-कृत रामचरितमानस सबसे अर्वाचीन माना जाता है। प्रस्तुत लेख मुख्यरूप से इन्हीं दोनों रामायणों पर आधारित है।

(1) बाल्मीकीय रामायण

चूँकि रामायण रामभक्ति प्रतिपादक वैष्णव ग्रन्थ है फलस्वरूप इसमें भगवान विष्णु को अपेक्षाकृत अधिक महत्त्व दिया गया है। परन्तु जहाँ-जहाँ भगवान् शिव का प्रसंग आया है, शिव को ही सर्वश्रेष्ठ माना गया है। उन्हें देवताओं में सर्वोच्च तथा देवों के देव माना गया है(बा. रामायण, बालकाण्ड 45/22-26, 55/12-13, 66/11-12, इत्यादि, उ. का. 87/11 इत्यादि)।

बा. रामायण में शिव सदा ही मानव कल्याण में लगे रहते हैं। विवाह के बाद भी महादेवजी के उमादेवी के गर्भ से कोई पुत्र नहीं हुआ तब ब्रह्मा आदि देवता भगवान् शिव के पास जा उन्हें प्रणाम कर बोले -

देवदेव महादेव लोकस्यास्य हिते रत।
सुराणां प्रणिपातेन प्रसादं कर्तुमर्हसि।। (बा. काण्ड 36/9)

अभिप्राय यह है कि इस लोक के हित में तत्पर रहनेवाले देवदेव महादेव! देवता आपके चरणों

---

1. एक कल्प में शिव के गण, नारदजी के श्रापवश, रावण एवं कुंभकरण बने। दूसरे कल्प में राजा भानुप्रताप ब्राह्मणों के श्रापवश रावण बना। तीसरे कल्प में जलंधर रावण बना। चौथे कल्प में हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु रावण एवं कुंभकरण बने। इन रावणों के वध हेतु श्रीहरी ने भी भिन्न-भिन्न कारणों से अनेक बार रामरूप धारण किया।(देखिए मानस बालकाण्ड 121/2 से 123/3 तथा 175/1-2)।

में मस्तक झुकाते हैं। इससे प्रसन्न होकर आप इन देवताओं पर कृपा करें। भगवान् शिव वरदाता, आशुतोष और दयानिधि हैं।(बा. काण्ड 55/13, उ. का. 16/33 आदि)

भगवान् शिव अपने ललाट पर चन्द्रमा को धारण करते हैं, वे सत्पुरुषों की पीड़ा हरनेवाले तथा भक्तों को मनोवांछित वर प्रदान करनेवाले श्रेष्ठ एवं उत्कृष्ट देवता हैं।

ततः सतामार्ति हरं परंवरंवरप्रदं चन्द्रमयूखभूषणम्। (बा. रा. उत्त. का. 31/44)

त्रिमूर्ति में ब्रह्मा प्राय: पीछे-पीछे ही रहते हैं और विश्व के सक्रिय संचालन और नियन्त्रण के कार्य में इनका स्थान त्रिमूर्ति के अन्य दो देवताओं, विष्णु एवं शिव की अपेक्षा घटकर है। जब-जब देवताओं पर कोई संकट पड़ता है, बहुधा ब्रह्मा देवताओं की ओर से इन्हीं दो देवताओं में से किसी एक से सहायता की याचना करते हुए नजर आते हैं(बा. काण्ड 36/8)। प्रत्येक महान् संकट में देवतागण सहायता और परित्राण के लिये भगवान् शिव के पास दौड़े जाते हैं। एक बार तो स्वयं विष्णु अन्य देवताओं को लेकर उनकी शरण में गये थे(बा. काण्ड 45/21-22)।

बा. रामायण में एक स्थल पर तो स्पष्टरूप से शिव को जगत् की सृष्टि और अन्त करनेवाला, सब लोकों का आधार और परमगुरु कहा गया है।

जगत्सृष्ट्यन्तकर्तारमजमव्यक्तरूपिणम्।
आधारं सर्वलोकानामाराध्यं परमं गुरुम्।। (उत्तरकाण्ड- 6/2)

उपरोक्त श्लोक का भावार्थ यह है कि "जो जगत् की सृष्टि और संहार करनेवाले, अजन्मा, अव्यक्त रूपधारी, सम्पूर्ण जगत् के आधार, आराध्य देव और परमगुरु हैं।"

एक अन्य स्थल पर शिव को अक्षर और अव्यय माना गया है(उत्तरकाण्ड 4/29)। वास्तव में शिव का जो स्वरूप बाल्मीकीय रामायण में दिखाई देता है, उसको हम उनके दार्शनिक परब्रह्मस्वरूप, जिनकी चर्चा श्वेताश्वतरादि उपनिषदों में स्पष्टरूप से की गयी है, का ही एक लोकप्रिय और सहजगम्यरूप मान सकते हैं।

भगवान् शिव का योगाभ्यास के साथ जो सम्बन्ध पहले-पहल उपनिषदों में दृष्टिगोचर होता है, वह रामायण में अधिक स्पष्ट हो जाता है। शिव की उपासना का और उनको प्रसन्न करने का सामान्य मार्ग तपश्चर्या है। 'भगीरथ' ने उनको इसी प्रकार सन्तुष्ट किया(बा. काण्ड 43/1, 2) और विश्वामित्र ने भी(बा. काण्ड 55/12, 14)। स्वयं देवताओं को भी शिव से वर पाने के लिये तप करना पड़ता है(उ. काण्ड 13/21-22)। भगवद्दर्शन और मोक्ष-प्राप्ति के लिये तप एवं योग को अत्यन्त उपयुक्त साधन माना गया है। तप एवं योगाभ्यास से मानव एवं दानव देवताओं से वर की प्राप्ति करते थे। रामायण में तप एवं योग को इतना महत्त्व दिया गया है कि शिव तक को, जो स्वयं योगाधिगम्य थे, योगाभ्यासी माना गया है और उन्हें हिमालय में तप एवं योगाभ्यास करते हुए दिखाया गया है(बालकाण्ड 36/26, 37/1, 3)।

यहाँ यह शंका नहीं करनी चाहिये कि भगवान् शिव को तपस्या की क्या आवश्यकता है? अगर उन्हें तपस्या की आवश्यकता है तो वे सर्वोच्च देव कैसे हो सकते हैं? वास्तव में हिन्दू ग्रन्थों में त्रिदेवों को तप-योग करते दिखाया गया है परन्तु भगवान् शिव को परमयोगी एवं परमतपी दिखाया गया है। उन्हें योगाचार्य भी कहा जाता है। उन्हें ऐसा करते इसलिये दिखाया गया है कि वे योगियों एवं तपस्वियों के आदर्श बन सकें। गीता में भगवान् कृष्ण कहते हैं कि तीनों लोकों में हमारे लिये कुछ भी कर्त्तव्य नहीं है फिर भी मैं कर्म या कर्त्तव्य का पालन इसलिये करता हूँ कि महापुरुषों का आचरण ही लोगों को आदर्श आचरण की शिक्षा देता है-

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते।।
न मे पार्थास्ति कर्त्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि।। (गीता 3/21-24)

इस उद्धरण से स्पष्ट हो जाता है कि भगवान् शिव भी लोकशिक्षा एवं आदर्श स्थापना हेतु सतत योगाभ्यास में रहते हैं। इसी तथ्य को ग्रन्थों में अपने-अपने ढंग से व्यक्त किया गया है।

भगवान् शिव की उदारता एवं दयालुता संबंधी कई कथाएँ रामायण में पायी जाती हैं। एक कथा शिव के विष-पान की है। यह कथा देवताओं के सागरमन्थन की वृहत कथा का एक भाग है। मन्थन से प्रकट विष की ज्वाला से भयभीत देवतागण शिव के पास गये और देवताओं की ओर से विष्णु ने प्रार्थना की कि वह सागरमन्थन के प्रथम फल के रूप में इस हलाहल को ग्रहण करें। इस पर भगवान् शिव उस भयंकर विष को इस प्रकार पी गये मानो वह अमृत हो।(बा. काण्ड सर्ग 45/18-26)

दूसरी कथा गंगावतरण की है। भगीरथ की भक्ति से प्रसन्न होकर भगवान् शिव ने गंगा के वेग को रोकने के लिये, उसे पृथ्वी पर पहुँचने से पहले अपने सिर पर लेना स्वीकार कर लिया(बा. काण्ड सर्ग 42/23-24 एवं 43/1-11 आदि)।

भगवान् शिव का एक महत्त्वपूर्ण पहलू यह है कि उनकी उपासना न केवल देवता और मनुष्य करते हैं अपितु इन दोनों के शत्रु माने जानेवाले दानव भी करते हैं। विद्युतकेश दानव के पुत्र सुकेश पर पार्वती एवं भगवान् शिव ने कृपा की थी तथा उसे अमर बनाकर उसके रहने के लिये एक आकाशचारी नगराकार विमान दिया था(उ. का. 4/28-32)। एक बार देवताओं की प्रार्थना पर भी भगवान् शिव ने दानवों(सुकेश पुत्रों) का संहार करने से इन्कार कर दिया क्योंकि वह पहले ही उन दानवों का संहार न करने का वचन दे चुके थे(उ. का. 6/3-10)। रावण का जब एक बार अंहकार टूट गया था तब वह शिव का भक्त हो गया था तथा उनसे वरदान में चन्द्रहास नामक खड्ग प्राप्त किया था(उ. का. 16/23-44 तथा 31/40-44)। पुनः रावण-पुत्र मेघनाद को पूर्वकाल में

महादेवजी से तमोमयी माया प्राप्त हुई थी जिसके प्रभाव से वह अपने को अन्तर्धान कर लेता था(उ. का. 29/23)। लवणासुर के पास जो अमोघ शूल था वह भी भगवान् शिव का ही दिया हुआ था।(उ. का. 63/25)। इला को भगवान् शिव के वरदान से ही पुरुषत्व की प्राप्ति हुई थी (उत्तर का. 90/19-20)। वहीं पर बताया गया है कि भगवान् शिव को अश्वमेध यज्ञ सबसे बढ़कर प्रिय है। (उत्तर का. 90/12)

भगवान् शिव से नितान्त भिन्न स्वभाव भगवान् विष्णु का है। विष्णु ने कदाचित् ही किसी दानव को कोई वर दिया हो और कदाचित् ही किसी दानव ने कभी विष्णु की उपासना की हो।[1] वे सदा देवताओं के पक्षपाती तथा दानवों के संहारक रहे हैं। रामायण में शिव दानवों की उपासना स्वीकार करते हुए और उन्हें वरदान देते हुए पाये जाते हैं। इस प्रकार शिव मनुष्यों, सुरों और दानवों सभी के उपास्य-देव थे। शिव की इस विशेषता को लेकर उनके उपासकों ने उनका पदोत्कर्ष किया क्योंकि इस आधार पर उन्हें समदर्शी एवं पक्षपात रहित देवता माना। वही एक ऐसे देवता थे जिन्हें सारी सृष्टि के लोग पूजते थे। स्वयं विष्णु भी यह दावा नहीं कर सकते थे। इसी कारण शिव-भक्तों ने शिव को ही देवाधिदेव और परमेश्वर माना। एक देवता ब्रह्मा भी थे जिनकी उपासना देव और दानव दोनों करते थे। परन्तु ब्रह्मा के इस प्रकार पूजे जाने के कारण बिल्कुल भिन्न और अपेक्षाकृत बड़े सरल थे।

चराचर के स्त्रष्टा के रूप में उनकी कल्पना की गयी है। उन्होंने जहाँ देवों की सृष्टि की, वहाँ दानवों और मनुष्यों तथा अन्य प्राणियों की भी। इस तथ्य को प्रजापति और उनकी दोनों पत्नियों, दिति एवं अदिति की कथा में लक्षणरूप से दर्शाया गया है। एक से दैत्य और दूसरे से देवता उत्पन्न हुए। देवों और दानवों के स्त्रष्टा होने के नाते दोनों के द्वारा ब्रह्मा की उपासना होनी स्वाभाविक थी। परन्तु ज्यों-ज्यों विष्णु एवं शिव का महत्त्व बढ़ने लगा, त्यों-त्यों ब्रह्मा का महत्त्व घटता गया और अन्त में लुप्तप्राय हो गया। यद्यपि प्राचीनता के नाते ब्रह्मा की गणना त्रिमूर्ति में होती रही; परन्तु वास्तव में भगवान् शिव ही एक ऐसे देवता रह गये जिनको यथार्थ में सर्वेश कहा जा सकता था।

डॉ. यदुवंशी(केन्द्रीय शिक्षा-मंत्रालय दिल्ली) ने अपनी पुस्तक "शैव मत", जो लन्दन-विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकृत थीसिस है (तथा बिहार राष्ट्रभाषा-परिषद पटना द्वारा 1955 में छपी है), के पृष्ठ 65-66 पर लिखा है कि "यह ध्यान देने योग्य बात है कि रामायण में लिंग का कोई उल्लेख नहीं है। परन्तु इससे यह सिद्ध नहीं होता कि उस समय लिंगोपासना का अस्तित्व न था। वास्तव में बाल्मीकीय रामायण से हमें शिवोपासना के संबंध में, वे सच्ची भक्ति से प्रसन्न होते थे और तपश्चर्या द्वारा उनसे वरदान प्राप्त किए जा सकते थे, इसके सिवा बहुत कुछ पता नहीं लगता। किसी शिव-मन्दिर अथवा शिव की मूर्ति का रामायण में उल्लेख नहीं है। चूँकि रामायण भक्तिवाद का विकसित रूप है और भक्तिवाद के विकास के साथ ही साथ मन्दिर एवं मूर्तियों का

1. अपवाद-स्वरूप प्रहलाद आदि कोई-कोई दानव ही विष्णुभक्त रहा है।

निर्माण हुआ, अतः यह मानना युक्तिसंगत होगा कि रामायण के समयतक मन्दिर में पूजा करने की प्रथा का प्रादुर्भाव हो चुका था और शिव की मूर्तियाँ भी बनायी जाती थीं और उनकी उपासना होती थी।"

डॉ. यदुवंशी का उपरोक्त कथन[1] कि रामायण में लिंगपूजा का उल्लेख नहीं है, ठीक नहीं है। रामायण का निम्नलिखित उद्धरण उपरोक्त मत का निराकरण करने के लिये पर्याप्त है –

यत्र यत्र च याति स्म रावणो राक्षसेश्वरः।
जाम्बूनदमयं लिङ्गं तत्र तत्र स्म नीयते।।
वालुकावेदिमध्ये तु तल्लिङ्गं स्थाप्य रावणः।
अर्चयामास गन्धैश्च पुष्पैश्चामृतगन्धिभिः।। (उत्तरकाण्ड 31/42–43)

अर्थ यह है–राक्षसराज रावण जहाँ–जहाँ भी जाता था, वहाँ–वहाँ एक सुवर्णमय शिवलिंग अपने साथ लिये जाता था। रावण ने बालू की वेदी पर उस शिवलिंग को स्थापित कर दिया और चन्दन तथा अमृत के समान सुगन्धवाले पुष्पों से उसका पूजन किया।

एक अन्य जगह पर(युद्धकाण्ड 123/19–21), जहाँ श्रीराम के सेतुबन्धन का उल्लेख है, कहा गया है कि इस स्थान पर भगवान् शिव ने राम पर कृपा की थी। श्रीराम सीता से कह रहे हैं कि यह तीर्थ परम पवित्र और महान् पातकों का नाश करनेवाला होगा।

अत्र पूर्वं महादेवः प्रसादमकरोद् विभुः।
एतत् तु दृश्यते तीर्थं सागरस्य महात्मनः।।
सेतुबन्ध इति ख्यातं त्रैलोक्येन च पूजितम्।
एतत् पवित्रं परमं महापातकनाशनम्।। (बा. रा. युद्धका. 123/20–21)

रामायणकार ने यहाँ पर संक्षेप में ही शिव की महत्ता तथा उनकी रामकृत उपासना का संकेत किया है। साथ ही यह कहा है कि यह स्थल एक महान् तीर्थ है। तीर्थ बिना मंदिर या मूर्ति के अधूरा ही होता है। अतः यद्यपि रामायण में स्पष्ट नहीं लिखा है कि राम ने शिवलिंग या मूर्ति स्थापित की परन्तु वर्णन से यह अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि राम ने अवश्य ही कोई शिवप्रतिमा या लिंग स्थापित किया होगा जैसा कि अन्य रामायणों में उल्लेख है।

भगवान् शिव को सभी विद्याओं का आचार्य माना गया है। रामायण में एक जगह उन्हें धनुर्वेद का भी आचार्य माना गया है। विश्वामित्र ने तपस्या द्वारा भगवान् शिव को सन्तुष्ट कर उनसे अंग, उपांग, उपनिषद् और रहस्यों सहित धनुर्वेद का ज्ञान प्राप्त किया था(बा. काण्ड 55/12–17)।

---

1. डॉ. यदुवंशी के मत को ही डॉ. गया चरण त्रिपाठी तथा श्रीरामकृष्ण गोपाल भण्डारकर निम्नलिखित पुस्तकों में स्वीकार करते हैं। डॉ. गया चरण त्रिपाठी : वैदिक देवता; भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली, 1982, पृष्ठ 548 तथा श्रीरामकृष्ण गोपाल भण्डारकर; वैष्णव, शैव और अन्य धार्मिक मत; भारतीय विद्या प्रकाशन, 1977, पृष्ठ 131

संक्षेप में बाल्मीकीय रामायण में भगवान् शिव को अविनाशी, अक्षर, अव्यय, जगत् का स्त्रष्टा, संहारकर्त्ता, जगदाधार, सबके आराध्य और परमगुरु माना गया है। यहाँतक कि श्रीहरि ने स्वयं भगवान् शिव को सब देवताओं में अग्रगण्य माना है (बालकाण्ड 45/24)। भगवान् शिव की भगवान् राम पर कृपा का भी उल्लेख रामायण में किया गया है। और उसी सन्दर्भ में रामेश्वर तीर्थ का भी उल्लेख किया गया है।

(2) रामचरितमानस

धार्मिक ग्रन्थों में (कम से कम उत्तर भारत में) सर्वाधिक जनप्रिय रामचरितमानस है। इस ग्रन्थ की विद्वानों ने अनेक दृष्टियों से प्रशंसा की है जिनमें एक रामचरितमानस की समन्वयात्मक भूमिका भी है। इसके अन्दर विभिन्न दार्शनिक एवं धार्मिक सिद्धान्तों का समन्वय है तथा इसमें किसी भी मत की आलोचना नहीं है। यद्यपि तुलसीदास राम के अनन्य भक्त थे और उन्होंने रामभक्ति का ही विस्तृत वर्णन अपने 'मानस' में किया है तथापि शैवों के लिये भी उनके मानस में पर्याप्त स्थान है। प्रस्तुत लेख का उद्देश्य शिवमहिमा एवं उसका स्वरूप, जो रामचरित मानस में चित्रित है उसकी रूपरेखा प्रस्तुत करना है।

अपने ग्रन्थ के आरंभ में वे गणेश की वन्दना के बाद भगवान् शिव की वन्दना करते हैं, उसके बाद अपने गुरु की और अन्त में अपने इष्टदेव की उसके पश्चात् हनुमान जी की। प्रश्न यह है कि तुलसीदास ने ऐसा क्यों किया कि दूसरे नम्बर पर अपने इष्टदेव भगवान् राम की जगह भगवान् शिव की प्रार्थना की? इसका उत्तर उनकी प्रार्थना में ही मिल जाता है और बाद में उसी बात का खुलासा अनेक जगहों पर मिलता है –

भवानीशङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।

याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तः स्थमीश्वरम्।। (मानस बा. काण्ड श्लोक 2)

अर्थात्–श्रद्धा और विश्वास के स्वरूप श्रीपार्वतीजी और शंकरजी की मैं वन्दना करता हूँ जिनके बिना सिद्धजन अपने अन्तःकरण में स्थित ईश्वर को नहीं देख सकते।

भाव यह है कि श्रद्धा–विश्वास की प्राप्ति के बिना ईश्वर–दर्शन नहीं होता तथा श्रद्धा–विश्वास भगवान् शिव एवं पार्वती की कृपा के बिना नहीं प्राप्त हो सकता। अन्य स्थल पर तुलसीदास ने यह लिखा है कि **"संकर भजन बिना नर भगति न पावइ मोरि"** (मानस, उत्तरकाण्ड 45)। भगवान् राम का यह कथन अपने नगरवासियों के प्रति दिये गये उपदेश का एक अंश है। यहाँ कहा गया है कि भगवान् राम की भक्ति बगैर शंकर के भजन के या उनकी कृपा के संभव नहीं है। इसी प्रकार काकभुशुण्डि को उनके गुरु ने उपदेश देते समय कहा है कि **"सिव सेवा कर फल सुत सोई। अबिरल भगति राम पद होई।।"** (उत्तरकाण्ड 105 ख/1)। भावार्थ यह है कि शिवजी की सेवा से भगवान् राम की दृढ़भक्ति प्राप्त होती है।

रामेश्वर के प्रसंग में भगवान् राम कहते हैं कि-

होइ अकाम जो छल तजि सेइहि। भगति मोरि तेहि संकर देइहि।।

(मानस लंकाकाण्ड 2/2)

भाव यह है कि जो छल छोड़कर और निष्काम होकर रामेश्वरजी की सेवा करेंगे, उन्हें शिवजी मेरी(राम की) भक्ति देंगे।

तुलसीदास भगवान् राम की भक्ति चाहते थे और यह तभी प्राप्त हो सकती थी जबकि पहले भगवान् शिव की भक्ति उन्हें प्राप्त हो जैसा ऊपर के उद्धरणों से स्पष्ट है। तुलसीदास ने न केवल ग्रन्थ के प्रारंभ में अपितु जहाँ से रामचरितमानस की मूल कथा प्रारंभ करते हैं उसके पहले भी वे भगवान् शिव को याद करते हुए कहते हैं-

सादर सिवहि नाइ अब माथा। बरनऊँ बिसद राम गुन गाथा।। (बा. का. 33/2)

संभु प्रसाद सुमति हियँ हुलसी। रामचरितमानस कबि तुलसी।। (बा. का. 35/1)

पुनः **गुर पितु मातु महेस भवानी। प्रनवउँ दीनबंधु दिन दानी।।** (बा. का. 14छ/2)

पहले का अर्थ यह है कि "अब मैं आदरपूर्वक श्रीशिवजी को सिर नवाकर श्रीरामचन्द्रजी के गुणों की कथा को विस्तार से कहता हूँ।"

दूसरे का अर्थ है "श्रीशिवजी की कृपा से उसके(तुलसी के) हृदय में सुन्दर बुद्धि का विकास हुआ, जिससे यह तुलसीदास 'रामचरितमानस' का कवि हुआ।"

तीसरे का अर्थ है "श्रीमहेश और पार्वती को मैं प्रणाम करता हूँ, जो मेरे गुरु व माता-पिता हैं, जो दीनबन्धु, और नित्य दान करनेवाले हैं।"

एक अन्य स्थल पर उन्होंने कहा हैं-

सुमिरि सिवा सिव पाइ पसाऊ। बरनउँ रामचरित चित चाऊ।।

(बा. का.-14(छ)/4)

"पार्वतीजी और शिवजी दोनों का स्मरण करके और उनका प्रसाद पाकर मैं चाव भरे चित्त से श्रीरामचन्द्रजी के चरित्र का वर्णन करता हूँ।"

ग्रन्थ के आरंभ में तुलसीदास ने भगवान् शिव को मात्र इसलिये नहीं याद किया है कि रामचरितमानस के आदि रचयिता भगवान् शिव हैं(भगवान् शिव ही मानस के प्रवर्तक हैं ऐसा तुलसी ने अनेक जगहों पर स्वीकार किया है। जैसे बा. का. 34/5-6)। बल्कि इसलिये भी कि भगवान् शिव तुलसी की दृष्टि में परमात्मा, ब्रह्म, आदिगुरु, सर्वज्ञ, आशुतोष, निर्गुण एवं सगुण, कृपासिंधु, चिदानंद, कैवल्य मुक्ति प्रदान करनेवाले, कल्पवृक्ष तथा कलियुग के पाप-समूह का नाश करनेवाले हैं और राम आदि अन्य देवों की भक्ति प्रदान करनेवाले हैं। इन बातों का स्पष्टीकरण नीचे किया जायगा। भगवान् शिव सभी गुणों से पूर्ण एवं रामेश्वर हैं और तुलसीदास यह कहते भी हैं कि-

जरत सकल सुर बृंद विषम गरल जेहिं पान किय।

तेहि न भजसि मन मंद को कृपाल संकर सरिस।।

(कि. का. प्रारंभ का 2 सरा सोरठा)

जिस भीषण हलाहल विष से सब देवतागण जल रहे थे उसको जिन्होंने स्वयं पान कर लिया, रे मन्द मन! तू उन शंकरजी को क्यों नहीं भजता? उनके समान कृपालु(और) कौन है?

फिर भी तुलसीदास ने (शिव के बजाय) राम को क्यों अपना इष्ट बनाया? इस प्रश्न के उत्तर का भी संकेत हमें मानस से प्राप्त हो सकता है।

बालकाण्ड में पार्वती के शिव-प्रेम की परीक्षा लेते समय सप्तर्षि-गण शिव की निन्दा[1](बा. का. 78/3) एवं भगवान् विष्णु की प्रशंसा करते हैं तथा यह भी कहते हैं कि नारद के उपदेश से किसी का भी घर नहीं बसा है(बा. का. 78)। इसपर पार्वती उत्तर देती हैं-

नारद बचन न मैं परिहरऊँ। बसउ भवनु उजरउ नहिं डरऊँ।।
गुर कें बचन प्रतीति न जेही। सपनेहुँ सुगम न सुख सिधि तेही।।

(बा. का. 79/4)

महादेव अवगुन भवन बिष्नु सकल-गुन धाम।
जेहि कर मनु रम जाहि सन तेहि तेही सन काम।। (बा. का. 80)

भावार्थ यह है- "मैं नारदजी के वचनों को नहीं छोड़ूँगी, चाहे घर बसे या उजड़े, इससे मैं नहीं डरती। जिसको गुरु के वचनों में विश्वास नहीं है, उसको सुख और सिद्धि स्वप्न में भी सुगम नहीं होती।"

"माना कि महादेवजी अवगुणों के भवन हैं और विष्णु समस्त सद्गुणों के धाम हैं, पर जिसका मन जिसमें रम गया, उसको तो उसी से काम है।"

यहाँ पर पार्वती ने अपने पक्ष में दो तर्क दिये हैं। पहले तर्क में उन्होंने कहा कि गुरु के वचनों में श्रद्धा ही सिद्धि देती है अत: मुझे अपने गुरु के वचनों(नारद के वचनों) में विश्वास है। दूसरा तर्क यह है कि जिसका दिल जिसमें रम जाय या लग जाय उसे किसी अन्य की आवश्यकता नहीं होती। उपरोक्त तर्कों के आलोक में अगर हम देखें तो तुलसीदास की रामभक्ति का कारण समझ में आ सकता है। उनके गुरु ने रामभक्ति का उपदेश दिया था फलस्वरूप उनका मन रामभक्ति में एक बार(बचपन में ही) रम गया तो उन्हें अन्य की भक्ति का अवकाश ही नहीं। निम्न उद्धरण पर ध्यान दीजिए। रामकथा के संदर्भ में वे कह रहे हैं-

मैं पुनि निज गुर सन सुनी कथा सो सूकरखेत।
समुझी नहिं तसि बालपन तब अति रहेउँ अचेत।। (बा. का. 30-क)

---

1. प्रत्यक्ष में उनके निन्दापरक वचन थे परन्तु उनके पीछे गूढ़-दार्शनिक ब्रह्म के लक्षण छिपे थे। आगे हम इसका खुलासा करेंगे।

पुन : **तदपि कही गुर बारहिं बारा। समुझि परी कछु मति अनुसारा।।**
भाषाबद्ध करबि मैं सोई। मोरें मन प्रबोध जेहिं होई।। (बा. का. 30 (ख)/1)

अर्थ है कि "वही(राम) कथा मैंने वाराह-क्षेत्र(सूकर-क्षेत्र) में अपने गुरु से सुनी, परन्तु उस समय मैं लड़कपन के कारण बहुत बेसमझ था, इससे उसको उस प्रकार(अच्छी तरह) नहीं समझा।"

"तो भी गुरुजी ने जब बार-बार कथा कही, तब बुद्धि के अनुसार कुछ समझ में आयी। वही अब मेरे द्वारा भाषा में रची जायगी जिससे मेरे मन को संतोष हो।" तुलसीदास की रामभक्ति का कारण समझ में आ जाने के बाद यह भी स्पष्ट हो जाता है कि रामभक्ति शिवकृपा के बिना संभव नहीं है, इसलिये मानस में शिव-वंदना पहले की गयी है।

भगवान् शिव का स्वरूप

रामचरित मानस में भगवान् शिव को ब्रह्म के रूप में चित्रित किया गया है। ब्रह्म का लक्षण है-सच्चिदानंद, सर्वेश, भगवान्, निर्गुण एवं अकाम आदि विशेषणों से जो युक्त हो। नीचे हम मानस से ऐसे उद्धरणों को उद्धृत करने जा रहे हैं जो भगवान् शिव को ब्रह्म अर्थात् सर्वश्रेष्ठ देव प्रतिपादित करते हैं।

एक बार त्रेता जुग माहीं। संभु गए कुंभज रिषि पाहीं।।
संग सती जगजननि भवानी। पूजे रिषि अखिलेस्वर जानी।। (बा. का. 47/1)

यहाँ अगस्त्य ऋषि द्वारा शिव-पार्वती को अखिलेश्वर एवं जगज्जननि माना गया है।

संकरु जगतबंद्य जगदीसा। सुर नर मुनि सब नावत सीसा।। (बा. का. 49/3)

यहाँ शिवजी को जगत् के सभी लोगों द्वारा वंदित एवं उनपर शासन करनेवाला कहा गया है।

कृपा सिन्धु सिव परम अगाधा ..... (बा. का. 57 ख/1)

यहाँ शिव को दया का सागर कहा गया है।

बीतें संबत सहस सतासी। तजी समाधि संभु अबिनासी।। (बा. का. 59/1)

यहाँ शिव को अविनाशी कहा गया है।

जगदातमा महेसु पुरारी। जगत जनक सब के हितकारी।। (बा. का. 63/3)

यहाँ शिवजी को जगदात्मा तथा संसार का रचयिता माना गया है।

अगुन अमान मातु पितु हीना। उदासीन सब संसय छीना।। (बा. का. 66/4)
जोगी जटिल अकाम मन नगन अमंगल वेष।
अस स्वामी एहि कहँ मिलिहि परी हस्त असि रेख।। (बा. का. 67)

इन उद्धरणों में नारदजी उमा के भावी पति की विशेषताओं की भविष्यवाणी हस्तरेखा के आधार पर कर रहे हैं। कह रहे हैं कि गुणहीन, मानहीन, माता-पिता-विहीन, उदासीन, संशयहीन(लापरवाह), योगी, जटाधारी, निष्कामहृदय, नंगा और अमंगल वेषवाला, ऐसा पति इसको मिलेगा। इसके हाथ में ऐसी ही रेखा पड़ी है।

भावी पति का ऐसा वर्णन सुनकर हिमवान तथा मैना आदि बड़े दुःखी हुए। तब नारदजी ने उनसे कहा कि विधाता ने जो कुछ लिख दिया है उसको कोई नहीं मिटा सकता। तो भी एक उपाय मैं बताता हूँ। मैंने वर के जो-जो दोष बतलाये हैं वे सभी शिवजी में हैं। यदि शिवजी के साथ विवाह हो जाय तो उपरोक्त दोषों को भी सब लोग गुणों के समान ही कहेंगे।

जे जे बर के दोष बखाने। ते सब सिव पहिं मैं अनुमाने।।
जौं बिबाहु संकर सन होई। दोषउ गुन सम कह सबु कोई।। (बा. का. 68/2)

पुनः **संभु सहज समरथ भगवाना। एहि बिबाहँ सब बिधि कल्याना।।**
दुराराध्य पै अहहिं महेसू। आसुतोष पुनि किएँ कलेसू।।
जौं तपु करै कुमारि तुम्हारी। भाविउ मेटि सकहिं त्रिपुरारी।।
बर दायक प्रनतारति भंजन। कृपासिन्धु सेवक मन रंजन।।
इच्छित फल बिनु सिव अवराधें। लहिअ न कोटि जोग जप साधें।।

(बाल काण्ड 69/2-4)

यहाँ शिवजी को सर्वसमर्थ, भगवान्, दुराराध्य, तप से शीघ्र प्रसन्न होनेवाले, भावी या भाग्य को भी मिटा देनेवाले, वर देनेवाले, कृपा-सिन्धु, शरणागत के दुःखों का नाश करनेवाले तथा सेवकों के मन को प्रसन्न करनेवाले कहा गया है। आगे कहा गया है कि शिवजी की आराधना किये बिना करोड़ो योग और जप करने पर भी वाञ्छित फल नहीं मिलता।

सती के शरीर-त्याग के उपरान्त तुलसीदास लिखते हैं -

चिदानन्द सुखधाम सिव बिगत मोह मद काम। (बा. का. 75)
जदपि अकाम तदपि भगवाना। भगत बिरह दुख दुखित सुजाना।।

(बा. का. 75/1)

यहाँ शिवजी को चिदानंद, सुखधाम, काम, मोह, मद आदि से रहित कहा गया है। ऐसा होने पर भी अपने भक्त(सती) के वियोग से दुःखी हैं ऐसा बताया गया है। अभिप्राय यह है कि वे भक्त-वत्सल हैं। वे भक्तों के दुःख से दुःखी तथा उनके सुख से सुखी होते हैं। वे स्वयं तो सुख-दुःख से परे त्रिगुणातीत हैं।

सप्तर्षिगण पार्वती के शिव-प्रेम की परीक्षा लेने के बाद उनकी जय-जयकर करते हुए कहते हैं-

तुम्ह माया भगवान सिव सकल जगत पितु मातु।
नाइ चरन सिर मुनि चले पुनि पुनि हरषत गातु।। (बा. का. 81)

इस दोहे में शिवजी को भगवान् तथा पार्वती को उनकी माया तथा इन दोनों को जगत् का माता-पिता कहा गया है। बा. का. (102/2) में भी उन्हें जगत् का माता-पिता कहा गया है।

पार्वती की महिमा बतलाते हुए कहा गया है–

अजा अनादि सक्ति अबिनासिनि। सदा संभु अरधंग निवासिनि।।
जग संभव पालन लय कारिनि। निज इच्छा लीला बपु धारिनि।।

(बा. का. 97/2)

अर्थ यह है कि–पार्वती अजन्मा, अनादि, अविनाशिनी शक्ति हैं। सदा शिवजी के अर्द्धांग में रहती हैं। ये जगत् की उत्पत्ति, पालन और संहार करनेवाली हैं, और अपनी इच्छा से ही लीला–शरीर धारण करती हैं।

यहाँ पर शिव–शक्ति की अनन्यता का कथन किया गया है। भगवान् शिव की माया–शक्ति होने के कारण उन्हें जगत् की उत्पत्ति, पालन एवं संहारकारिणी माना गया है।

एक स्थल पर पार्वती भगवान् शिव के प्रति कह रही हैं–

..... त्रिभुवन महिमा बिदित तुम्हारी।।
चर अरु अचर नाग नर देवा। सकल करहिं पद पंकज सेवा।।

(बा. का. 106/4)

प्रभु समरथ सर्बग्य सिव सकल कला गुन धाम।
जोग ग्यान बैराग्य निधि प्रनत कलपतरु नाम।। (बा. का. 107)

भाव यह है कि शिवजी की महिमा त्रिभुवन में ज्ञात है। चर–अचर, नाग, नर, देव सभी उनकी पूजा करते हैं; वे समर्थ, सर्वज्ञ, सभी कलाओं एवं गुणों के धाम हैं; योग, ग्यान, वैराग्य के भण्डार हैं तथा उनका नाम शरणागतों के लिये कल्पवृक्ष है।

पार्वती ने पुनः कहा है–

तुम्ह त्रिभवन गुर बेद बखाना। आन जीव पाँवर का जाना।। (बा. का. 110/3)

यहाँ भगवान् शिव को त्रिभुवन का गुरु कहा गया है।

तुलसीदास ने अनेक स्थलों पर भगवान् शिव के गुणों का गान किया है। शिवोपसना सिद्ध, योगी, सुर, किन्नर, मुनि सभी करते हैं(बा. का. 105; 106/4 इत्यादि)। शिवोपासना नारद(बा. का. 137/3), दशरथ(बा. का. 309/1; 346/4 अयो. का. 43/4; 44), जनक(बा. का. 309/1), भगवान् राम(आयो. का. 102/1; 104; 105/3; 225/4; बा. का. 357; लंका का. 1/3; 119–क), भरत(अयो. का. 156/4), अयोध्यावासी(अयो. का. 1), कौसल्या(बा. का. 345) आदि द्वारा की गयी है। इन उपासना संबंधी संदर्भों से भी शिव की गरिमा का परिचय मिलता है। शिव की भक्ति के बिना व्यक्ति को सुख–शान्ति नहीं मिल सकती तथा शिव–द्रोह से अशान्ति एवं दुःख ही मिलता है(बा. का . 266/1, अयो. का. 171/3, किष्कि. का. 16/3, लंका का. 31 ख/1, बाल का.

63/2, बाल का. 64/2 उत्तरकाण्ड 107 ख./7; 120 ख/12 इत्यादि)।

बालकाण्ड 69/4 में कहा गया है कि शिवजी की आराधना किये बिना करोड़ों योग और जप करने पर भी वाञ्छित फल नहीं मिलता (**इच्छित फल बिनु सिव अवराधें। लहिअ न कोटि जोग जप साधें**)।

तुलसीदास लंकाकाण्ड के प्रारंभ में शिव की प्रार्थना करते हुए कहते हैं कि-

.....

काशीशं कलिकल्मषौघशमनं कल्याणकल्पद्रुमं
नौमीड्यं गिरिजापतिं गुणनिधिं कन्दर्पहं शङ्करम्।।
यो ददाति सतां शम्भुः कैवल्यमपि दुर्लभम्।
खलानां दण्डकृद्योऽसौ शङ्करः शं तनोतु मे।।

जिसका अर्थ है-काशीपति, कलियुग के पाप-समूह का नाश करनेवाले, कल्याण के कल्पवृक्ष, गुणों के निधान और कामदेव को भस्म करनेवाले पार्वतीपति वन्दनीय शंकरजी को मैं नमस्कार करता हूँ। जो सत्पुरुषों को अत्यन्त दुर्लभ कैवल्यमुक्तितक दे डालते हैं और जो दुष्टों को दण्ड देनेवाले हैं, वे कल्याणकारी श्रीशम्भु मेरे कल्याण का विस्तार करें।

इसी प्रकार उत्तरकाण्ड के प्रारंभ के तीसरे श्लोक में तुलसीदास कहते हैं-

कुन्दइन्दुदरगौरसुन्दरं अम्बिकापतिमभीष्टसिद्धिदम्।
कारुणीककलकञ्जलोचनं नौमि शङ्करमनङ्गमोचनम्।।

भावार्थ है-कुन्द के फूल, चन्द्रमा और शंख के समान सुन्दर गौरवर्ण, जगज्जननी पार्वतीजी के पति, वाञ्छित फल के देनेवाले, (दुःखियों पर सदा) दया करनेवाले, सुन्दर कमल के समान नेत्रवाले, कामदेव से छुड़ानेवाले श्रीशंकरजी को मैं नमस्कार करता हूँ।

उपरोक्त दोनों काण्डों से उद्धृत श्लोकों से भगवान् शिव कलियुग के पापों को दूर करनेवाले, सर्वगुणसम्पन्न, कल्पवृक्ष के समान, कैवल्य प्रदान करनेवाले तथा कामदेव से मुक्ति दिलानेवाले सिद्ध होते हैं।

उत्तरकाण्ड के अन्तर्गत ही भगवान् शिव का निम्नलिखित प्रसिद्ध स्तुति का अष्टक आता है जिसमें भगवान् शिव को मोक्ष-स्वरूप, विभु, ब्रह्म, वेद-स्वरूप, ईश्वर, सबके स्वामी, माया आदि से रहित, गुणों से रहित, भेदरहित, इच्छारहित, चेतन आकाशरूप, दिगम्बर, निराकार, ओंकार के मूल, वाणी, ज्ञान और इन्द्रियों से परे, कैलासपति, महाकाल के भी काल, कृपालु, गुणों के धाम, परमेश्वर, गंगाधारी, अजन्मा, करोड़ों सूर्य के समान प्रकाशवाला, तीनों प्रकार के दुःखों को दूर करनेवाला, सच्चिदानन्दघन, मोह को हरनेवाला तथा समस्त जीवों के हृदय में निवास करनेवाला माना गया है।

नमामीशमीशान निर्वाणरूपं .....

..... प्रभो पाहि आपन्नमामीश शंभो।। (उत्तरकाण्ड 107 (ख)/1-8)

उपरोक्त शीर्षक के अन्तर्गत दिये गये उद्धरणों से भगवान् शिव परब्रह्म सिद्ध होते हैं। ब्रह्म का वर्णन करना वेदों की सामर्थ्य के बाहर है इसीलिये उसे वेदों में नेति-नेति कहा गया है। तुलसीदास कहते हैं-

चरित सिंधु गिरिजा रमन बेद न पावहिं पारु।
बरनै तुलसीदासु किमि अति मतिमंद गवाँरु।। (बा. का. 103)

अर्थात्-भगवान् शिव का चरित्र समुद्र के समान है जिसका पार वेद भी नहीं पाते तो मंदबुद्धि और गँवार तुलसीदास उनका वर्णन किस प्रकार कर सकता है।

भगवान् शिव एवं भगवान् राम

शिवचरित कहते हुए तुलसीदास ने पार्वती के प्रति सप्तर्षि के मुख से निन्दा के बहाने शिव तत्त्व-निरूपण बड़ी सुन्दरता से कराया है। सप्तर्षि कहते हैं -

निर्गुन निलज कुबेष कपाली। अकुल अगेह दिगम्बर ब्याली।।
कहहु कवन सुखु अस बरु पाएँ। भल भूलिहु ठग के बौराएँ।।

(बा. काण्ड 78/3-4)

इसका सतही अर्थ है- "जो गुणहीन, निर्लज्ज, बुरे वेषवाला, नरकपालों की माला पहननेवाला, कुलहीन, बिना घर-बार का, नंगा और शरीर पर साँपों को लपेटे रखनेवाला है ऐसे वर के मिलने से कहो तुम्हें क्या सुख होगा? तुम उस ठग(नारद) के बहकावे में आकर खूब भूली।"

यहाँ जो वर का दोष पार्वती को सप्तर्षि बता रहे हैं वही शिव-तत्त्व-निरूपण है। शिव निर्गुण हैं क्योंकि वे निष्कल और निर्विशेष हैं। शिव निलज हैं, क्योंकि 'एकमेवाऽद्वितीयम्' हैं। अर्थात् ब्रह्माण्ड में उस एक तत्त्व के अलावा अन्य कोई भी नहीं है, वही सब कुछ हैं, इसलिये वहाँ लज्जा का स्थान कहाँ है, लज्जा तो अपने से भिन्न किसी और के प्रति होती है। शिव कुवेष हैं, क्योंकि वे वैराग्य की मूर्ति हैं। शिव कपाली[1] हैं क्योंकि वे सनातन हैं। शिव अकुल हैं, क्योंकि वे अनादि एवं अजन्मा हैं। शिव अगेह हैं, क्योंकि वे अपरिच्छिन्न हैं। अर्थात् परिच्छिन्न(सीमित) वस्तु का ही कोई गेह(रहने का स्थान) होगा। अपरिच्छिन्न होने से वे सर्वत्र हैं, उनका कोई गेह संभव नहीं। शिव दिगम्बर हैं, क्योंकि वे निरावरण हैं। अर्थात् उनपर कोई आवरण या ढकनेवाली वस्तु नहीं है। जो स्वयं निर्गुण है उसपर आवरण या पर्दा कैसे हो सकता है? शिव व्याली हैं, क्योंकि वे सबके अभिभावक या स्वामी हैं। सबके स्वामी होने के नाते वे व्यालों, जिससे सभी दूर रहते हैं, को भी अपने पास रखते हैं।

1. पौराणिक साहित्य में शिव को कपाली इसलिये कहा जाता है कि उनके हाथ में ब्रह्मदेव का कपाल है। भाव यह है कि जो ब्रह्मा की सृष्टि और संहार कर सकता है वही सनातन देव है।

उपरोक्त विशेषताओं के होते हुए भी शिव को तुलसीदास ने महाभागवत के रूप में चित्रित किया है। शिव का भागवत होना उनकी अपार लीला को ही व्यक्त करती है। एक रूप से शिव निर्गुण, निराकार, निष्कल, निरञ्जन हैं; दूसरे रूप से वही शिव भगवान्, सगुण, साकार, मृत्युञ्जय, जगद्गुरु, योगीश्वर, विश्वेश्वर, विश्वमूर्त्ति तथा आशुतोष महादेव हैं और तीसरी मूर्त्ति से वही शिव महाभागवत, काशी में तारक मन्त्र का उपदेश करनेवाले, परमत्यागी, कामदेव को जलानेवाले और दया के समुद्र हैं।

तुलसीदास ने शिव एवं राम दोनों को समान ऐश्वर्य एवं विशेषताओं से युक्त माना है। फिर भी शिव की गरलपान जैसी विशेषताएँ शिव को राम से विलक्षण सिद्ध करती हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि तुलसी की दृष्टि में शिव एवं राम में तादात्म्य है। अर्थात् तत्त्वत: शिव राम हैं या राम शिव हैं। अगर ऐसा न होता तो तुलसीदास यह नहीं लिखते कि –

गुर पितु मातु महेस भवानी। प्रनवउँ दीनबंधु दिन दानी।।
सेवक स्वामि सखा सिय पी के। हित निरुपाधि सब बिधि तुलसी के।।

(बालकाण्ड 14 (छ)/2)

"श्रीमहेश और पार्वती को मैं प्रणाम करता हूँ, जो मेरे गुरु और माता–पिता हैं जो दीनबन्धु और नित्य दान करनेवाले हैं, जो सीतापति रामचन्द्रजी के सेवक, स्वामी और सखा हैं तथा मुझ तुलसीदास का सब प्रकार से सच्चा हित करनेवाले हैं।"

तादात्म्य के बिना सेवक–स्वामी–सखा–इन तीन अत्यन्त भिन्न संबंधों का एकत्र सन्निवेश नहीं हो सकता। वही शिव जो राम से तत्त्वत: अभिन्न हैं तथा उनके स्वामी भी हैं, वे लोकशिक्षा के लिये रामचरित मानस में आदर्श भागवत हैं। अर्थात् राम को इतना सम्मान देते हैं कि उनको वे इष्टरूप से जपते हैं, याद करते हैं। मानस में भगवान् शिव एवं हनुमान्जी को महाभागवत के रूप में चित्रित किया गया है।

वही शिव सती के विरह से दु:खी हैं, कैलास उन्हें अच्छा नहीं लगता क्योंकि वहाँ रहने से सती की स्मृति मन में आती रहती है। फलस्वरूप –

जपहिं सदा रघुनायक नामा। जहँ तहँ सुनहिं राम गुन ग्रामा।। (बाल का. 74/4)
चिदानंद सुखधाम सिव बिगत मोह मद काम।
बिचरहिं महि धरि हृदयँ हरि सकल लोक अभिराम।। (बा. का. 75)
कतहुँ मुनिन्ह उपदेसहिं ग्याना। कतहुँ राम गुन करहिं बखाना।। (बा. का. 75/1)

भाव यह है कि सती के वियोग(भक्त के वियोग) से भगवान् शिव दु:खी हैं तथा वे कैलास छोड़कर भगवान् राम के गुणों की चर्चा करते तथा मुनियों को उपदेश देते हुए धरती पर घूम रहे थे। जो शिव चिदानंद, सर्वज्ञ, मोह, मद एवं काम से रहित हैं उनकी ऐसी दशा है। यह दशा ठीक राम के समान है जो भगवान् होते हुए भी सीता के वियोग में दु:खी होते जंगलों में भटक रहे थे। वास्तव में

शिव एवं सती, राम एवं सीता का तात्त्विक रूप से वियोग हो ही नहीं सकता। यह सब तो लोकशिक्षा के लिये ही होता है।

जब भगवान् शिव इस प्रकार सती के वियोग में भटक रहे थे तो वहाँ भगवान् राम प्रकट होकर सती के हिमालय के घर जन्म लेने का संदेश देते हैं और उनकी प्रशंसा करते हुए उनके पाणिग्रहण के लिये अनुरोध करते हैं–

अब बिनती मम सुनहु सिव जौं मो पर निज नेहु।
जाइ बिबाहहु सैलजहि यह मोहि मागें देहु।। (बा. का. 76)

यहाँ भगवान् राम कहते हैं– "हे शिवजी यदि मुझपर आपका स्नेह है तो अब आप मेरी विनती सुनिये। मुझे यह माँगे दीजिए कि आप जाकर पार्वती के साथ विवाह कर लें।"

यहाँ राम की यह दशा है कि वे प्रार्थना करते हैं, अपने प्रेम की याद दिलाते हैं, याचना करते हैं। भागवत शिव संकट में पड़ जाते हैं, उन्हें विरह–दुःख स्वीकार है, परन्तु सीता का रूप धारण करनेवाली सती का पाणिग्रहण करके भक्तिपथ से विचलित होना स्वीकार नहीं है।

मानस में शिवजी को भागवत रूप में जहाँ चित्रित किया गया है उसमें कहा गया है कि सती ने राम की परीक्षा के समय सीता का रूप धारण किया था। चूँकि राम उपास्य हैं अतः सीता भी मातृ–स्वरूप होने से उपास्य ही हैं। सती सीता का रूप धारणकर उपास्यरूपा हो गयी(पत्नीरूप नहीं रही) इसी कारण शिव के सामने संकट उत्पन्न हो गया है कि नये जन्मवाली सती के साथ वे विवाह कैसे करें? विवाह करने से वे भक्तिपथ से विचलित हो जायँगे।

पर भागवत होने से भगवान् राम के वचन का उल्लंघन नहीं कर सकते थे। अतः उन्होंने विवाह करना स्वीकार कर लिया–

कह सिव जदपि उचित अस नाहीं। नाथ बचन पुनि मेटि न जाहीं।।
सिर धरि आयसु करिअ तुम्हारा। परम धरमु यह नाथ हमारा।

(बा. का . 76/1)

शिवजी ने कहा–यद्यपि ऐसा उचित नहीं है परन्तु स्वामी की बात भी मेटी नहीं जा सकती। हे नाथ! मेरा यही परम धर्म है कि मैं आपकी आज्ञा को सिरपर रखकर उसका पालन करूँ।

राम द्वारा शिव को विवाह के लिये आग्रह करना तथा शिव का उसे स्वीकार करना यह सब लोकहित से ही प्रेरित था। तारकासुर का वध उसका एक प्रेरक था। शिव–विवाह का उद्देश्य कोई भोग–विलास नहीं था यद्यपि लौकिक दृष्टि का अनुसरण कर भगवान् शिव यथा अवसर उचित व्यवहार करते थे। अतः भगवान् शिव का पार्वती के साथ कैलासपर भोग–विलास जगत् के कल्याण के लिये ही होता है। परम भागवत शिव संसाररूपी लीला में अपनी भूमिका लोकआदर्श एवं लोककल्याण के लिये ही निभा रहे थे। जिन्होंने काम को भस्म किया उनका भोग–विलास कैसा? इस

भोग-विलास का तत्त्व तुलसीदास ने स्वयं भगवती के मुख से सप्तर्षि के प्रति कहलवाया है। सप्तर्षियों ने उमा को शिव-प्रेम से विचलित करने के लिये कहा था कि जिस शिव ने काम को जला डाला है उससे तुम्हें कौन सा सुख मिलेगा? इसपर उमा उत्तर देती हैं-

तुम्हरें जान कामु अब जारा।
अब लगि सम्भु रहे सबिकारा।। (बा. का. 89/1)
हमरें जान सदा सिव जोगी।
अज अनवद्य अकाम अभोगी।। (बा. का. 89/2)

अर्थ है- "आपकी समझ में शिवजी ने कामदेव को अब जलाया है, अबतक तो वे विकार युक्त(कामी) ही रहे। किन्तु हमारी समझ से तो शिवजी सदा से ही योगी, अजन्मा, अनिन्द्य, काम-रहित और भोगहीन हैं।"

तुम्ह जो कहा हर जारेउ मारा।
सो अति बड़ अबिबेकु तुम्हारा।। (बा. का. 89/3)

"आपने जो यह कहा कि शिवजी ने कामदेव को भस्म कर दिया, यह आपकी बड़ी भारी मूर्खता है।"

तात अनल कर सहज सुभाऊ।
हिम तेहि निकट जाइ नहिं काऊ।।
गएँ समीप सो अवसि नसाई।
अस मन्मथ महेस की नाई।। (बा. का. 89/4)

"हे तात! अग्नि का तो यह सहज स्वभाव ही है कि ठंढ (या बर्फ) उसके समीप कभी नहीं आ सकती और आ जानेपर वह अवश्य नष्ट हो जायगी। महादेवजी और कामदेव के संबंध में यही बात समझनी चाहिये।"

भावार्थ यह कि न तो पार्वती और न ही शिव ने लौकिक भोग-विलास के लिये विवाह किया। इसके पीछे महान् उद्देश्य था लोक-कल्याण एवं लोक-आदर्श की स्थापना। भगवान् शिव ने परम भागवत अर्थात् भक्त का आदर्श प्रस्तुत करने के कारण ही सती का मानसिक त्याग किया था। और उसी परम्परा को निभाने के लिये वे पार्वती से विवाह करने में संकोच कर रहे थे। परन्तु भगवान् राम द्वारा प्रेरित करनेपर ही उन्होंने विवाह किया।

जहाँतक भगवान् शिव एवं भगवान् राम के लौकिक या लीलामय(न कि तात्त्विक) संबंधों की बात है तुलसीदास ने तीन प्रकार के संबंध माने हैं। पहला संबंध है सेवक और स्वामी का। सेतुबंध रामेश्वर की स्थापना इसका एक उदाहरण है। यहाँ राम के ईश्वर या स्वामी भगवान् शिव हैं। इसी प्रकार भगवान् शिव का पंचवटी में विचरते हुए विरही राम को नमस्कार करना राम को शिव का उपास्य होने

का एक उदाहरण है, अर्थात् दोनों एक दूसरे के प्रति सेवक एवं सेव्य भाव रखते हैं।[1]

दूसरा संबंध मित्रता का है, बराबरी का है। तीसरा संबंध अनन्यता का है। तात्त्विक दृष्टि से राम की जो विशेषताएँ बतायी गयीं हैं वे सभी विशेषतायें भगवान् शिव की भी बतायी गयीं हैं। निम्नलिखित उदाहरणों से ये सभी संबंध स्पष्ट हो जायँगे।

लिंग थापि बिधिवत करि पूजा। सिव समान प्रिय मोहि न दूजा।।
सिव द्रोही मम भगत कहावा। सो नर सपनेहुँ मोहि न पावा।।
संकर बिमुख भगति चह मोरी। सो नारकी मूढ़ मति थोरी।(लंका का. 1/3-4)
संकरप्रिय मम द्रोही सिव द्रोही मम दास।
ते नर करहिं कलप भरि घोर नरक महुँ बास।। (लंका का. 2)
जे रामेस्वर दरसनु करिहहिं। ते तनु तजि मम लोक सिधरिहहिं।।
जो गंगाजलु आनि चढ़ाइहि। सो साजुज्य मुक्ति नर पाइहि।।
होइ अकाम जो छल तजि सेइहि।भगति मोरि तेहि संकर देइहि।।
मम कृत सेतु जो दरसनु करिही। सो बिनु श्रम भवसागर तरिही।।
(लंका का. 2/1-2)

उपरोक्त उद्धरणों में भगवान् शिव की पूजा करने के उपरान्त राम ने कहा है कि शिव हमारे लिये अत्यन्त प्रिय हैं। शिव-द्रोही मेरा द्रोही है, उसको मेरा न तो दर्शन हो सकता है न ही भक्ति मिल सकती है। शिव-द्रोह से कल्पभर नरकवास होता है। पुनः रामेश्वर-दर्शन के महात्म्य को बताते हुए राम द्वारा कहा गया है कि उसके दर्शन से मेरी(राम की) भक्ति तथा मुक्ति प्राप्त होती है।

उपरोक्त संदर्भों के अलावा भी भगवान् शिव की पूजा राम द्वारा किये जाने का उल्लेख है(अयो. का. 225/4; 105/3; 102/1; लंका का. 119 क आदि में)।

पुनः भगवान् शिव के संदर्भ में निम्नलिखित संदर्भ देखें-

संकरु जगतबंद्य जगदीसा। सुर नर मुनि सब नावत सीसा।। (बा. का. 49/3)
तिन्ह नृपसुतहि कीन्ह परनामा। कहि सच्चिदानन्द परधामा।(बा. का. 49/4)

सती मन में सोच रही हैं कि शंकरजी की वन्दना सारा जगत् करता है फिर भी उन्होंने एक राजपुत्र को सच्चिदानंद परमधाम कहकर प्रणाम किया।

भरद्वाज मुनि याज्ञवल्क्यजी से पूछते हैं कि रामनाम की बहुत महिमा बतायी गयी है तो मैं यह जानना चाहता हूँ वे कौन से राम हैं जिनकी इतनी महिमा बतायी है कि जिसे भगवान् शिव सदा जपते

1. वराह पुराण में भगवान् शिव ऋषियों से कह रहे हैं कि भगवान् विष्णु देवताओं के कार्य के लिये प्रत्येक युग में मनुष्य शरीर धारण करते हैं तथा जगत् एवं देवताओं के कल्याण के लिये मैं भी भगवान् विष्णु के दोनों विग्रहों(दैवी एवं मानवी) की उपासना श्वेतद्वीप में कृतयुग में करता हूँ(72/7, 8)।

यो देवकार्याणि सदा कुरुते परमेश्वरः। मनुष्यभावमाश्रित्य स मां स्तौति युगे युगे।।
लोकमार्गप्रवृत्त्यर्थं देवकार्यार्थ सिद्धये। अहं च तौ सदा स्तौमि श्वेतद्वीपेकृते युगे।।

रहते हैं(बा. का. 45/2; तथा 46)।

मित्रता एवं अनन्यता के संदर्भ में निम्नलिखित उद्धरण देखिए –

याज्ञवल्क्यजी भरद्वाजजी से कहते हैं –

सिव पद कमल जिन्हहि रति नाहीं। रामहि ते सपनेहुँ न सोहाहीं।।
बिनु छल बिश्वनाथ पद नेहू। राम भगत कर लच्छन एहू।।

(बा. का. 103/3)

भगवान् विष्णु नारद–मोह के पश्चात् उनको सलाह देते हैं –

जपहु जाइ संकर सत नामा। होइहि हृदयँ तुरत बिश्रामा।।
कोउ नहिं सिव समान प्रिय मोरें। असि परतीति तजहु जनि भोरें।।
जेहि पर कृपा न करहिं पुरारी। सो न पाव मुनि भगति हमारी।।
अस उर धरि महि बिचरहु जाई। अब न तुम्हहि माया निअराई।।

(बा. का. 137/3–4)

अर्थ यह है कि– "शिवजी के चरणकमलों में जिनकी प्रीति नहीं है, वे रामजी को सपने में भी अच्छे नहीं लगते। विश्वनाथ श्रीशिवजी के चरणों में निष्कपट प्रेम होना यही रामभक्त का लक्षण है।"

" (भगवान् विष्णु ने नारदजी से कहा–) जाकर शंकरजी के शतनाम का जप करो, इससे हृदय में तुरंत शान्ति होगी। शिवजी के समान मुझे कोई प्रिय नहीं है, इस विश्वास को भूलकर भी न छोड़ना।"

"हे मुनि!(नारद) शिवजी जिसपर कृपा नहीं करते, वह मेरी भक्ति नहीं पाता। हृदय में ऐसा निश्चय करके जाकर पृथ्वी पर विचरो। अब मेरी माया तुम्हारे निकट नहीं आवेगी।"

राम एवं शिव में बहुत सी समानतायें बतायी गयीं हैं तथा दोनों ही एक दूसरे को प्रिय हैं। एक की भक्ति बिना दूसरे की भक्ति के संभव नहीं है। यही कारण है कि नामजप के दौरान होनेवाले अपराधों में से एक अपराध यह भी है कि शिव एवं विष्णु में भेद करना। जो ऐसा भेद करता है उसे जप से सिद्धि नहीं मिलती। समानता के तत्त्वों में से कुछ के उद्धरण देखें–

बिष्नु जो सुर हित नरतनु धारी। सोउ सर्बग्य जथा त्रिपुरारी।

(बा. का.50/1)

यहाँ दोनों को समान रूप से सर्वज्ञ बताया है।

संत संभु श्रीपति अपबादा ..... (बा. का 63/2)

यहाँ शिव एवं विष्णु की निन्दा नहीं सुननी चाहिये–इसका उपदेश है।

हरि हर निन्दा सुनइ जो काना। होइ पाप गोघात समाना।(लंका का. 31 (ख)/1)

यहाँ कहा गया है कि हरि और हर दोनों की निन्दा सुनना गौघात के समान है।

भगवान् राम एवं भगवान् शिव दोनों को ही मानस में ऐसी–ऐसी विशेषताओं से युक्त माना गया है जिससे वे दोनों ब्रह्म साबित होते हैं। अत: दोनों में अनन्यता का संबंध सिद्ध होता है अर्थात् शिव और राम दोनों तात्त्विक दृष्टि से ब्रह्म ही हैं।

जिस प्रकार लोकशिक्षा एवं लोककल्याण के लिये भगवान् शिव अनेक रूप(कभी राम के

स्वामी, कभी सेवक कभी ब्रह्मरूप) धारण करते हैं उसी प्रकार भगवान् विष्णु भी अनेक रूपों(जैसे शिवभक्त, शिव के स्वामी इत्यादि) को धारण करते हैं।[1]

यद्यपि भगवान् राम तत्त्वतः भगवान् शिव से अभिन्न हैं तथापि उनकी बाह्य लीलाओं में भेद है। भगवान् विष्णु राम, कृष्ण आदि रूपों में धरती पर सीमित समय के लिये आते हैं। उनका बाहरी रूप समय के साथ-साथ भिन्न-भिन्न होता है। जबकि भगवान् शिव का सगुण साकाररूप भी सदा एकरस रहता है। इसीलिये उन्हें अविनाशी कहा गया है। राम का जन्म हुआ और मृत्यु भी हुई।

पुनः समुद्रमन्थन से उत्पन्न हलाहल को पान करने में जब सभी देवता असमर्थ हो गये तब भगवान् विष्णु ने भगवान् शिव से निवेदन किया कि वे उस महान् कर्म को करें।

जरत सकल सुर बृन्द बिषम गरल जेहिं पान किय।
तेहि न भजसि मन मंद को कृपाल संकर सरिस।।

(किष्किन्धाकाण्ड प्रारंभ का सोरठा)

भगवान् शिव का अविनाशी होना, दयावश गरलपानरूपी कर्त्तव्य करना तथा आशुतोष होना उन्हें भगवान् राम से विलक्षण सिद्ध करता है।

सगुणोपासना

सगुण उपासना में भगवान् की मूर्ति का पूजन तथा तीर्थ का सेवन किया जाता है। मूर्तिपूजन में नामजप का सबसे ज्यादा महत्त्व है। रामचरित मानस में भगवान् शिव पार्वती को कह रहे हैं कि-

सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा।।
अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई।।

(बा. का. 115/1)

भाव यह है कि सगुण एवं निर्गुण में कुछ भी भेद नहीं है-मुनि, पुराण, पण्डित, वेद सभी ऐसा कहते हैं। जो निर्गुण, अरूप(निराकार), अलख(अव्यक्त) और अजन्मा है, वही भक्तों के प्रेमवश सगुण हो जाता है।

निर्गुण ब्रह्म की भक्ति अत्यन्त कठिन होने के कारण सर्वसुलभ नहीं है जबकि सगुण-साकार की भक्ति अत्यन्त सुलभ एवं सरल है। रामचरित मानस में कहा गया है-

---

1. महाभारत में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि हम और भगवान् शिव दो नहीं हैं। एक ही शक्ति की दो अभिव्यक्तियाँ हैं। इस अवस्था में हम किस देवता की पूजा करें, जबकि हमसे परे कोई है ही नहीं? और यदि किसी की पूजा नहीं करते हैं तो मर्यादा भंग होती है। मेरे किये हुए कार्य को प्रमाण या आदर्श मानकर सब लोग उसका अनुकरण करने लग जायँगे। जिनकी पूजनीयता वेद-शास्त्रों द्वारा प्रमाणित है, उन्हीं देवताओं की पूजा करनी चाहिये। ऐसा सोचकर ही मैं रुद्र देवता की पूजा करता हूँ तथा रुद्रदेव हमारी। अतः संसार को आदर्श प्रदान करने या लोक-शिक्षा के लिये हम दोनों आपस में एक दूसरे की पूजा कर लेते हैं।(महाभारत-शान्तिपर्व-मोक्षधर्मपर्व-341/23-26)। मूल श्लोकों के लिये कृपया 'महाभारत में शिवतत्त्व' नामक लेख (जो इसी पुस्तक में है) देखें।

निर्गुन रूप सुलभ अति सगुन जान नहिं कोइ।
सुगम अगम नाना चरित सुनि मुनि मन भ्रम होइ। (उत्तर काण्ड 73 (ख))

"भगवान् का निर्गुणरूप अत्यन्त सुलभ(सहज ही समझ में आ जानेवाला) है परन्तु सगुणरूप को कोई नहीं जानता। इसलिये उन सगुण भगवान् के अनेक प्रकार के सुगम और अगम चरित्रों को सुनकर मुनियों के भी मन को भ्रम हो जाता है।" यह दोहा भगवान् राम के बाह्य व्यवहार को देखकर उत्पन्न मोह के प्रसंग में आया है। जैसे सती को भगवान् राम का सीता के वियोग में घूमते देखकर तथा नागफाँस में बँध जाने को देखकर गरुड़ को मोह हो गया था वैसे ही लोगों को मोह भगवान् के सगुण रूप में किये व्यवहार को देखकर हो जाता है – चाहे वे सगुणरूप के व्यवहार भगवान् राम के हों या भगवान् शिव के।

उदाहरण के लिये भगवान् शिव के भक्तों(जैसे काकभुशुण्डि, उत्तर का. 105 (ख)/3) को यह मोह हो सकता है कि वे(शिवजी) सबके कारण होते हुए भी राम को क्यों भजते हैं? जैसा पहले ही बताया गया है कि इन सबके पीछे कुछ रहस्य छिपे होते हैं जैसे लोकशिक्षा तथा लोककल्याण[1] आदि। रामचरितमानस में आया है –

भरत सरिस को राम सनेही। जगु जप राम रामु जप जेही।।
(अयोध्या काण्ड – 217/4)

भाव है – "सारा जगत् श्रीराम को जपता है, और श्रीरामजी भरत को जपते हैं। उस भरतजी जैसा श्रीरामचन्द्रजी का प्रेमी कौन होगा?" शास्त्रों में ऐसा वर्णन आता है कि जो भगवान् को जिस प्रकार जपता है भगवान् भी उसको उसी प्रकार जपते हैं। जैसे गीता में भगवान् ने कहा है –

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्। (भगवद्गीता 4/11)

"जो भक्त मुझे जिस प्रकार भजते हैं, मैं भी उनको उसी प्रकार भजता हूँ।" मानस में भी उपरोक्त संदर्भ में यही बताया गया है कि भरत राम को अतिशय प्रेम के कारण भजते हैं इसीलिये भगवान् राम भी उन्हें बड़े प्रेम से सदा भजते रहते हैं।

यही कारण है कि भगवान् शिव भी श्रीराम को भजते हैं क्योंकि भगवान् राम को शिव से ज्यादा कोई भी प्रिय नहीं है।(लंका का. 1/3)

यद्यपि सगुणरूप समझने में कठिन है फिर भी साधन करने में सरल है। कलियुग में भक्ति के साधन को सरल बताया गया है तथा भक्ति के पक्ष में मानस में बहुत कुछ कहा गया है –

1. श्रीमद्भागवत में कहा गया है कि "जगत्पति महादेवजी सारे संसार के सुहृद् हैं, स्नेहवश सबका कल्याण करनेवाले है; वे लोकहित के लिये ही उपासना, चित्त की एकाग्रता और समाधि आदि साधनों का आचरण करते रहते हैं। (भागवत 4/6/35)

विद्यातपोयोगपथमास्थितं तपधीश्वरम्।
चरन्तं विश्वसुहृदं वात्सल्याल्लोकमङ्गलम्।।

ग्यान पंथ कृपान कै धारा ..... (उत्तर का. 118 ख/1)

भगति कि साधन कहऊँ बखानी। सुगम पंथ मोहि पावहिं प्रानी।

(अर. काण्ड 15/3 इत्यादि)

अर्थात्-ज्ञान का मार्ग दुधारी तलवार के समान है अर्थात् कठिन है जबकि भक्ति के साधन से भगवान् को सरलता से पाया जा सकता है।

मानस में, जैसा पहले ही कहा जा चुका है कि, शिवजी कलियुग के पापों से मुक्ति देनेवाले हैं(लंका का. श्लोक 2, 3)। पुनः आगे कहा गया है-

लिंग थापि बिधिवत करि पूजा। सिव समान प्रिय मोहि न दूजा।।

(लंकाका. 1/3)

जे रामेस्वर दरसनु करिहहिं। ते तनु तजि मम लोक सिधरिहहिं।।

जो गंगाजलु आनि चढ़ाइहि। सो साजुज्य मुक्ति नर पाइहि।। (लंकाका. 2/1)

भावार्थ है-जो रामेश्वर का दर्शन करेंगे वे मरणोपरान्त श्रीविष्णु के लोक को पधारेंगे। जो रामेश्वरजी को गंगाजल लाकर चढ़ायेगा वह व्यक्ति सायुज्य मुक्ति पायेगा।

अन्यत्र कहा है -

मुक्ति जन्म महि जानि ग्यान खानि अघ हानि कर।

जहँ बस संभु भवानि सो कासी सेइअ कस न।। (किष्कि. का. प्रारंभ का सोरठा)

"जहाँ श्रीशिव-पार्वती बसते हैं, उस काशी को मुक्ति की जन्मभूमि, ज्ञान की खान और पापों का नाश करनेवाली जानकर उसका सेवन क्यों न किया जाय?"

उपरोक्त उद्धरणों में भगवान् शिव की सगुण-साकार पूजा का संकेत मिलता है। लिंगपूजन, रामेश्वर एवं काशीतीर्थ का सेवन भगवान् शिव की सगुण-पूजा के अंग हैं जिनसे मुक्ति मिल सकती है।

मानस में भगवान् शिव की पार्थिवपूजा का भी उल्लेख है। वनवास के लिये प्रस्थान करने के उपरान्त गंगानदी को केवट की नाव से पार करने के बाद भगवान् राम ने स्नान कर पार्थिवपूजन किया।

"तब मज्जनु करि रघुकुलनाथा। पूजि पारथिव नायउ माथा।।"

(अयो. का. 102/1)

"फिर रघुकुल के स्वामी श्रीरामचन्द्रजी ने स्नान करके पार्थिव पूजा की और शिवजी को सिर नवाया।"

रामजी के उपरोक्त आचरण से यही आदर्श स्थापित होता है कि भगवान् शिव की पार्थिवपूजा करनी चाहिये(अगर शिवपूजा के लिये स्थापित लिंग न मिले तो)। पार्थिवपूजा हर कोई-स्त्री, शूद्र अन्त्यज-कर सकता है उसके लिये कोई निषेध नहीं है।

मानस के कुछ उद्धरणों से ऐसा प्रतीत होता है कि भगवान् शंकर ही लोगों के (भजन या उपासना से संबंधित) कर्मों का फल देते हैं(अयोध्या का. 167/4 आदि)। अत: उपासक को दृढ़ विश्वास के साथ वेदमत का अनुसरण करते हुए शिव की पूजा करनी चाहिये। भूत-प्रेत तथा वाममार्गी पूजा को उपरोक्त संदर्भों में निन्दित बताया गया है। (अयो. का 167 आदि)

नारदजी हिमालय को उपदेश दे रहे हैं कि यदि तुम्हारी कन्या तप करे तो महादेवजी होनहार को मिटा सकते हैं(बा. का. 69/3)।

वहीं पर आगे कह रहे हैं-

बर दायक प्रनतारति भंजन। कृपासिंधु सेवक मन रंजन।
इच्छित फल बिनु सिव अवराधें। लहिअ न कोटि जोग जप साधें।।

(बा. का. 69/4)

भाव यह है कि इच्छित फल की प्राप्ति शिव की आराधना के बिना (योग तथा जप आदि) अन्य किसी साधन से नहीं हो सकती। इसी कारण से न केवल शैव अपितु वैष्णव एवं शाक्त आदि सभी को अपने इष्ट की कृपा या भक्ति प्राप्ति हेतु भगवान् शिव की आराधना करनी चाहिये तथा इसी कारण से तुलसीदास 'विनय पत्रिका' में भगवान् शिव से राम-भक्ति की याचना करते हैं(विनय पत्रिका 3/4, 7/5, 10/9आदि)।

.....

देहु काम-रिपु राम-चरन रति, तुलसीदास कहँ कृपानिधान।

(विनय पत्रिका 3/4)

.....

देहु काम-रिपु! राम-चरन रति। तुलसीदास प्रभु हरहु भेद-मति।।

(विनय पत्रिका 7/5)

रामचरित मानस में कथित शिव-पूजा के माहात्म्य को पढ़ने पर एक बहुत ही मनोरंजक एवं महत्त्वपूर्ण प्रश्न उभर कर सामने आता है। इस प्रश्न को उठाने से पहले हम मानस के शिवपूजा संबंधी महत्त्वपूर्ण उद्धरणों में से एक को लें-

एक बार रघुनाथजी ने एक आम सभा बुलवायी जिसमें गुरु वसिष्ठ तथा ब्राह्मणों सहित सभी नगरवासी उपस्थित थे। जब सभी विशिष्ट व्यक्तियों सहित गुरु वसिष्ठ आदि ने यथायोग्य आसन ग्रहण कर लिया तब उनको वे ज्ञान एवं भक्ति से संबंधित उपदेश देने लगे। इसी उपदेश के प्रसंग में वे कहते हैं-

औरउ एक गुपुत मत सबहि कहऊँ कर जोरि।
संकर भजन बिना नर भगति न पावइ मोरि।। (उत्तर का. 45)

इसका अर्थ है– "और भी एक गुप्त मत है, मैं उसे सबसे हाथ जोड़कर कहता हूँ कि शंकरजी के भजन बिना मनुष्य मेरी भक्ति नहीं पाता।"

भगवान् राम पुरवासियों को सत्संग, भक्ति एवं गुरु की महिमा का बखान करने के बाद इस गुप्त या रहस्यमय मत को बतलाते हैं।

प्रश्न यह है कि भगवान् राम का यह मत रहस्यमय या गोपनीय क्यों है? तथा राम की भक्ति विना शिव की उपासना के क्यों नहीं संभव है? यह मत रहस्यमय इसलिये है कि यह सबको आसानी से समझ में आनेवाली नहीं है।

रामभक्ति बगैर शिवभक्ति के प्राप्त नहीं होती इसका एक कारण यह हो सकता है कि भक्ति भी सांसारिक कार्यों की भाँति(जैसे कोई अर्जी सीधे बड़े साहब को न जाकर पहले छोटे साहब के पास जाती है जहाँ से वह अनुशंसित होकर बड़े साहब के पास पहुँचती है) पहले छोटे देवता की उसके बाद बड़े देवता की करनी चाहिये। पहले हम देख चुके हैं कि भगवान् शिव राम के उपास्य भी हैं। अतः उपरोक्त प्रकार की व्याख्या स्वीकार नहीं की जा सकती।

असली कारण यह हो सकता है कि चूँकि भगवान् शिव सभी देवताओं के अग्रज एवं श्रेष्ठ हैं इसलिये अग्रपूजा के तौर पर सभी देवताओं के उपासकों को(न कि मात्र रामजी के) भगवान् शिव की पूजा अपेक्षित है। बाल्मीकीय रामायण में भगवान् विष्णु भगवान् शिव को 'हलाहल' अर्पित करते समय कहते हैं– "सुरश्रेष्ठ(रुद्रदेव) देवताओं के समुद्रमंथन करने पर जो वस्तु सबसे पहले प्राप्त हुई है, वह आपका भाग है; क्योंकि आप सब देवताओं में अग्रगण्य हैं। प्रभो अग्रपूजा के रूप में प्राप्त हुए इस विष को आप यहीं पर ग्रहण करें।"(बा. रामा. बालकाण्ड 45/23–24)

चूँकि भगवान् शिव सगुण रूप में भी अविनाशी हैं इसलिये उन्हें भगवान् राम सहित सभी देवों का अग्रज माना गया है। पुनः भगवान् शिव के सर्वदेवमय होने के कारण उनकी उपासना पहले होनी चाहिये। भगवान् राम को भगवान् शिव इतने प्रिय हैं कि वे अपने अग्रज की पूजा के विना किसी व्यक्ति की पूजा सीधे–सीधे ग्रहण नहीं करते। सीधी पूजा ग्रहण करना उन्हें भगवान् शिव की अवहेलना लगती है। इसी कारण भगवान् शिव की कृपाप्राप्ति के बगैर भगवान् राम की भक्ति नहीं प्राप्त हो सकती।

सारांश यह है कि भगवान् शिव की पूजा करने से सभी देवताओं की पूजा हो जाती है तथा किसी भी देवता की(विशेषतः श्रीराम की) भक्ति प्राप्त हो सकती है।

तुलसीदास ने मानस में भगवान् शिव की दयालुता, आशुतोषपने आदि गुणों का संक्षेप में प्रसंगानुसार बखान किया है परन्तु 'विनयपत्रिका' में उन गुणों का बहुत ही खुलासा किया है, जिससे शिव–भक्ति का आकर्षण और अधिक हो जाता है। उदाहरण के लिये भगवान् शिव आशुतोष हैं जो जरा सी भक्ति से सब कुछ देने के लिये तत्पर हो उठते हैं, वे महादानी हैं। काशी में मरनेवालों को

भगवान् शिव मुनियों को भी जो गति दुर्लभ है वह गति प्रदान करते हैं। 'विनय पत्रिका' के निम्नलिखित सन्दर्भ देखिये–

को जाँचिये संभु तजि आन।
दीनदयालु भगत आरति–हर, सब प्रकार समरथ भगवान।। (3/1)
जो गति अगम महामुनि दुर्लभ, कहत संत, श्रुति, सकल पुरान।
सो गति मरन–काल अपने पुर, देत सदासिव सबहिं समान।। (3/3)
दानी कहुँ संकर – सम नाहीं।
..... (4/1)
जोग कोटि करि जो गति हरिसों, मुनि माँगत सकुचाहीं।
बेद–बिदित तेहि पद पुरारि पुर, कीट पतंग समाहीं।।
ईस उदार उमापति परिहरि, अनत जे जाचन जाहीं।
तुलसिदास ते मूढ़ माँगने, कबहुँ न पेट अघाहीं।। (4/3-4)
जाँचिये गिरिजापति कासी। जासु भवन अनिमादिक दासी।।
औढर–दानि द्रवत पुनिथोरें। सकत न देखि दीन कर जोरें।।
सुख–संपति, मति–सुगति सुहाई। सकल सुलभ संकर–सेवकाई।।
.....
तुलसिदास जाचक जस गावै। विमल भगति रघुपति की पावै।। (6/1-5)
देव बड़े, दाता बड़े, संकर बड़े भोरे।
किये दूर दुख सबनिके, जिन्ह–जिन्ह कर जोरे।। (8/1)
जलज–नयन, गुन–अयन, मयन–रिपु, महिमा जान न कोई।
बिनु तव कृपा राम–पद–पंकज, सपनेहुँ भगति न होई।।
रिषय, सिद्ध, मुनि, मनुज, दनुज, सुर, अपर जीव जग माहीं।
तव पद बिमुख न पार पाव कोउ, कल्प कोटि चलि जाहीं।।
.....
तुलसिदास हरि–चरन–कमल–बर, देहु भगति अबिनासी।। (9/2-3, 5)
ज्ञान–वैराग्य, धन–धर्म, कैवल्य–सुख, सुभग सौभाग्य शिव! सानुकूलं।।
तदपि नर मूढ आरूढ संसार–पथ, भ्रमत भव, विमुख तव पादमूलं।।
नष्टमति,दुष्ट अति,कष्ट–रत, खेद–गत, दास तुलसी शंभु–शरण आया।
देहि कामारि! श्रीराम–पद–पंकजे भक्ति अनवरत गत–भेद–माया।।
(10/8-9)

कंबु – कुंदेंदु – कर्पूर – गौरं शिवं, सुन्दरं, सच्चिदानंदकंदं।
सिद्ध – सनकादि – योगीन्द्र – बृंदारका, विष्णु – विधि – वन्द्य चरणारविंदं।।
लोकनाथं, शोक – शूल – निर्मूलिनं, शूलिनं मोह – तम – भूरि – भानुं।
कालकालं, कलातीतमजरं, हरं, कठिन – कलिकाल – कानन कृशानुं।।

(12/2, 4)

जिन्ह कहँ बिधि सुगति न लिखी भाल। तिन्ह की गति कासीपति कृपाल।।
उपकारी कोऽपर हर – समान। सुर – असुर जरत कृत गरल पान।।
बहुकल्प उपायन करि अनेक। बिनु संभु – कृपा नहिं भव – बिबेक।।
बिग्यान – भवन, गिरिसुता – रमन। कह तुलसिदास मम त्रास समन।।

(13/6-9)

कह तुलसिदास सुनु सिव सुजान। उर बसि प्रपंच रचे पंचबान।।
करि कृपा हरिय भ्रम – फंद काम। जेहि हृदय बसहिं सुखरासि राम।।

(14/8-9)

"भगवान् शिव को छोड़कर और किससे याचना की जाय? आप दीनों पर दया करनेवाले, भक्तों के कष्ट हरनेवाले और सब प्रकार से समर्थ ईश्वर हैं।" (3/1)

"जिस परमगति को संत-महात्मा, वेद और सब पुराण महान् मुनियों के लिये भी दुर्लभ बताते हैं, हे सदाशिव! वही परमगति काशी में मरने पर आप सभी को समान भाव से देते हैं।" (3/3)

"शंकर के समान दानी कहीं नहीं हैं।" (4/1)

"करोड़ों प्रकार से योग की साधना करके मुनिगण जिस परमगति को भगवान् हरि(विष्णु) से माँगते हुए सकुचाते हैं वही परमगति त्रिपुरारि शिवजी की पुरी काशी में कीट-पंतग भी पा जाते हैं, यह वेदों से प्रकट है।" (4/3)

"ऐसे परम उदार पार्वतीपति को छोड़कर जो लोग दूसरी जगह माँगने जाते हैं, उन मूर्ख माँगनेवालों का पेट भली-भाँति कभी नहीं भरता।" (4/4)

"पार्वतीपति शिवजी से ही याचना करनी चाहिये, जिनका घर काशी है और अणिमा आदि आठों सिद्धियाँ जिनकी दासी हैं। शिवजी महाराज औढरदानी हैं, थोड़ी सी सेवा से ही पिघल जाते हैं। वे दीनों को हाथ जोड़े खड़ा नहीं देख सकते, उनकी कामना बहुत शीघ्र पूरी कर देते हैं। शंकर की सेवा से सुख-संपत्ति, सुबुद्धि और उत्तम गति आदि सभी पदार्थ सुलभ हो जाते हैं। जो आतुर जीव उनकी शरण गये, उन्हें शिवजी ने तुरन्त अपना लिया और देखते ही पलभर में सबको निहाल कर दिया। भिखारी तुलसीदास भी यश गाता है, इसे भी राम की निर्मल भक्ति की भीख मिले।" (6/1-5)

"हे शंकर! आप बड़े देव हैं, बड़े दानी हैं और बड़े भोले हैं। जिन-जिन लोगों ने आपके सामने

हाथ जोड़े, आपने बिना भेद-भाव के उनसब लोगों के दु:ख दूर कर दिये।" (8/1)

"आपके नेत्र कमल के समान हैं, आप सर्वगुणसम्पन्न हैं, कामदेव के शत्रु हैं, आपकी कृपा बिना न तो कोई आपकी महिमा जान सकता है और न श्रीराम के चरणकमलों में, स्वप्न में भी उसकी भक्ति होती है।" (9/2)

"ऋषि, सिद्ध, मुनि, मनुष्य, दैत्य, देवता और जगत् में जितने जीव हैं, वे सब आपके चरणों से विमुख रहते हुए करोड़ों कल्प बीत जानेपर भी संसार-सागर का पार नहीं पा सकते।" (9/3)

"हे काशीपते! हे श्मशानवासी! हे पार्वती के मनरूपी मानसरोवर में विहार करनेवाले राजहंस! तुलसीदास को श्रीहरि(विष्णु) के श्रेष्ठ चरणकमलों में अनपायिनी भक्ति का वरदान दीजिए।" (9/5)

"हे शिव! आप जिसपर अनुकूल होते हैं उसको ज्ञान, वैराग्य, धन-धर्म, कैवल्य-सुख(मोक्ष) और सुन्दर सौभाग्य आदि सब सहज ही मिल जाते हैं, तो भी खेद है कि मूर्ख मनुष्य आपकी चरणसेवा से मुँह मोड़कर संसार के विकट पथ पर इधर-उधर भटकते फिरते हैं।" (10/8)

"हे शम्भो! हे कामारि! मैं नष्ट-बुद्धि, अत्यन्त दुष्ट, कष्टों में पड़ा हुआ, दुखी तुलसीदास आपकी शरण आया हूँ; आप मुझे श्रीराम के चरणारविन्द में ऐसी अनन्य एवं अटल भक्ति दीजिये जिससे भेदरूप माया का नाश हो जाय।" (10/9)

"जिनका शरीर शंख, कुन्द, चन्द्र और कपूर के समान चिकना, कोमल, शीतल, श्वेत और सुगन्धित है, जो कल्याणरूप, सुन्दर और सच्चिदानन्दकन्द हैं। सिद्ध, सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, योगीराज, देवता, विष्णु और ब्रह्मा जिनके चरणारविन्द की वन्दना किया करते हैं।" (12/2)

"जो लोकों के स्वामी, शोक और शूल को निर्मूल करनेवाले, त्रिशूलधारी तथा महान् मोहान्धकार को नाश करनेवाले सूर्य हैं। जो काल के भी काल हैं, कालातीत हैं, अजर हैं, आवागमनरूप संसार को हरनेवाले और कठिन कलिकालरूपी वन को जलाने के लिये अग्नि हैं।" (12/4)

"विधाता ने जिनके मस्तक पर अच्छी गति का कोई योग ही नहीं लिखा, काशीनाथ कृपालु शिवजी उनकी गति हैं-शिवजी की कृपा से वे भी सुगति पा जाते हैं।" (13/6)

"श्रीशंकर के समान उपकारी संसार में दूसरा कौन है, जिन्होंने विष की ज्वाला से जलते हुए देव-दानवों को बचाने के लिये स्वयं विष पी लिया।" (13/7)

"अनेक कल्पोंतक कितने ही उपाय क्यों न किये जायँ शिवजी की कृपा बिना संसार के असलीस्वरूप का ज्ञान कभी नहीं हो सकता।" (13/8)

"तुलसीदास कहते हैं कि हे विज्ञान के धाम पार्वती-रमण शंकर! आप ही मेरे भय को दूर करनेवाले हैं।" (13/9)

"तुलसीदास कहते हैं कि हे परमज्ञानी शिवजी! यह कामदेव मेरे हृदय में बस कर बड़ा प्रपञ्च रचता है।" (14/8)

"इस काम की भ्रम-फाँसी को काट डालिये, जिससे सुखस्वरूप श्रीराम मेरे हृदय में सदा निवास करें।" (14/9)

उपरोक्त उद्धरणों में तुलसीदास भगवान् शिव से केवल रामभक्ति की याचना करते हैं न कि मोक्षादि की। इसका कारण यह है कि अन्य भक्तिमार्गियों की भाँति तुलसीदास भी सबसे बड़ा पुरुषार्थ मोक्ष को न मानकर भक्ति को मानते हैं क्योंकि उनके मत में भक्ति मुक्ति से बढ़कर है। मानस में तुलसीदास भरत से कहलवाते हैं-

अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरबान।
जनम जनम रति राम पद यह बरदानु न आन।। (अयोध्याकाण्ड 204)

अर्थात्-मुझे न अर्थ की इच्छा है, न धर्म की, न काम की और न मैं मोक्ष ही चाहता हूँ। जन्म-जन्म में मेरा श्रीरामजी के चरणों में प्रेम हो, बस, यही वरदान माँगता हूँ, दूसरा कुछ नहीं।

काकभुशुण्डि के मुख से भगवान् के प्रति कहलावाया गया है-

अबिरल भगति बिसुद्ध तव श्रुति पुरान जो गाव।
जेहि खोजत जोगीस मुनि प्रभु प्रसाद कोउ पाव।।
.....
सोइ निज भगति मोहि प्रभु देहु दया करि राम।। (उ. काण्ड 84 क एवं ख)

अर्थात्-आपकी जिस अविरल (प्रगाढ़) एवं विशुद्ध भक्ति को श्रुति और पुराण गाते हैं, जिसे योगीश्वर मुनि खोजते हैं और प्रभु की कृपा से कोई विरला ही जिसे पाता है; हे प्रभु राम! दया करके मुझे अपनी वही भक्ति दीजिये।

अतः तुलसीदास भगवान् शिव से जिस वस्तु की याचना करते हैं उसी की भगवान् राम से भी याचना करते हैं (उ. का. 130 (ख) आदि)। क्योंकि बगैर शिव की भक्ति या पूजा से राम-भक्ति नहीं मिल सकती।

(3) वसिष्ठ रामायण

इसे महारामायण तथा योगवासिष्ठ आदि नामों से जाना जाता है। इसे महर्षि वाल्मीकि की रचना कहा जाता है। यह ग्रन्थ ज्ञानपरक होने के कारण ज्ञानियों तथा योगियों में ज्यादा प्रसिद्ध है। साधना के अनेक रास्तों में एक प्रमुख रास्ता ज्ञान का बताया गया है। इस ज्ञान को साधना अत्यधिक कठिन है। यह ग्रन्थ ज्ञानप्रधान होने के कारण शिवतत्त्व के बारे में भी ज्ञानदृष्टि रखता हुआ वर्णन करता है।

सदाशिव परमदेव के रूप में

भुशुण्डजी वसिष्ठजी से अपने जन्मवृत्तान्त के प्रसंग में महादेवजी का वर्णन करते हुए कहते

हैं "मुनिवर वसिष्ठजी इस जगत् में देवाधिदेव महादेव समस्त स्वर्गवासी देवताओं में श्रेष्ठ हैं। ब्रह्मादि देवता भी उनकी वन्दना करते हैं। उनके शरीर के वामार्ध में सौन्दर्यशालिनी भगवती पार्वती विराजमान रहती हैं .....।"

अस्त्यस्मिञ्जगति श्रेष्ठः सर्वनाकनिवासिनाम्।
देवदेवो हरो नाम देवदेवाभिवन्दितः।। (योग0 नि0 प्र0 पूर्वार्ध 18/1)

इसी सर्ग में पूर्वोक्त स्थल पर भगवान् शिव के सगुण-साकाररूप का विस्तार से वर्णन किया गया है। वह रूप वैसा ही है जैसा पुराणों तथा अन्य ग्रन्थों में पाया जाता है।

एक स्थल पर महादेवजी वसिष्ठजी से कहते हैं कि- "विशुद्ध अन्तःकरण वाले मुमुक्षु पुरुषों ने मोक्ष के उपासकों के बोध के लिये नाम-रूपरहित सच्चिदानन्द परमात्मा में चेतन, ब्रह्म, शिव, आत्मा, ईश, परमात्मा और ईश्वर आदि पृथक्-पृथक् नाम-रूपों की कल्पना कर रक्खी है। वसिष्ठजी! इस तरह जगत्तत्त्व एवं शिवनामक परमात्मतत्त्व ही सर्वदा सब तरह से सब कुछ है। प्राचीन मुमुक्षु लोगों ने शिव, आत्मा और परब्रह्म इत्यादि नामों से उस परमात्मा की भिन्न-भिन्न कल्पना की है; वस्तुतः परमात्मा एक ही है, उसमें कुछ भी भेद नहीं है।"

मोक्षोपासकबोधाय.....।
.....
चिद्ब्रह्म शिव आत्मेशपरमात्मेश्वरादिका।
एतस्मिन्कल्पिता संज्ञा निःसंज्ञे पृथगीश्वरे।।
एवमेतज्जगत्तत्त्वं स्वं तत्त्वं शिवनामकम्।
सर्वथा सर्वदा सर्व सर्वं यत्सुखमास्व भो।।
शिव आत्मा परं ब्रह्मेत्यादिशब्दैस्तु भिन्नता।
पुरातनैर्विरचिता तस्य भेदो न वस्तुतः।।

(योगवा. निर्वा. प्र. पू. 41/21-25)

अनेक सर्गों में उपरोक्त बात दुहरायी गयी है(जैसे नि. प्र. पू./35/13-14)। सदाशिव ही सच्चिदानन्द ब्रह्म हैं। एक स्थल पर वसिष्ठजी भगवान् शिव से पूछते हैं- "जगत् के स्वामिन्! इन सदाशिव की कौन-सी शक्तियाँ हैं, वे किस तरह से रहती हैं, ...?" (संक्षिप्त योगवा. नि. प्र. पू. स. 37 पृ. 403)

महादेवजी उत्तर देते हैं- "उस निराकार, सर्वात्मक, अप्रमेय, परमशान्त, सच्चिदानन्दघन सदाशिव परमात्मा की इच्छासत्ता, व्योमसत्ता, कालसत्ता, नियतिसत्ता और महासत्ता-ये पाँच सत्तात्मक शक्तियाँ हैं(तात्पर्य यह है कि **'सोऽकामयत बहु स्याम्'** इस श्रुतिवाक्य के अनुसार सबसे पहले उनकी इच्छासत्ता अभिव्यक्त हुई। तदनन्तर आकाशकी अभिव्यक्ति होनेपर आकाशसत्ता, तदन्तर

कालात्मक सूत्र की अभिव्यक्ति होनेपर कालसत्ता, सद्रूप के नियत संस्थानवाले भूत एवं भौतिक पदार्थों का अविर्भाव होनेपर नियति-सत्ता अभिव्यक्त हुई और तदनन्तर उनमें अनुस्यूत महासत्ता अभिव्यक्त हुई)। इनके सिवा ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति, कर्तृत्वशक्ति और अकर्तृत्वशक्ति आदि परमात्मा की अनेक शक्तियाँ हैं। उन सदाशिव-स्वरूप परमात्मा की इन शक्तियों का कोई अन्त नहीं है।

अप्रमेयस्य शान्तस्य शिवस्य परमात्मनः।
सौम्य चिन्मात्ररूपस्य सर्वस्यानाकृतेरपि।।
इच्छासत्ता व्योमसत्ता कालसत्ता तथैव च।
तथा नियतिसत्ता च महासत्ता च सुव्रत।।
ज्ञानशक्तिः क्रियाशक्तिः कर्तृताऽकर्तृतापि च।
इत्यादिकानां शक्तीनामन्तो नास्ति शिवात्मनः।।

(योगवा. निर्वा. प्र. पू. 37/14-16)

इस सृष्टि में अनेक ब्रह्माण्ड हैं। उनमें से एक ब्रह्माण्ड-विशेष के महाप्रलय के दृश्य का वर्णन करते हुए वसिष्ठजी श्रीराम से कहते हैं-

"जब ब्रह्मलोकपर्यन्त वह सारा ब्रह्माण्ड एकार्णव के जल से परिपूर्ण हो गया, ...तब इसी बीच में मैंने वहाँ एक भंयकर रूप देखा, जो आकाश के मध्यभाग से प्रकट हुआ था। ..... उसने सारे आकाश को व्याप्त कर रखा था और देखने में ऐसा जान पड़ता था मानो ..... अंधकार ही देहधारण करके खड़ा हो गया हो। वह प्रातःकाल के एक लाख सूर्यों का प्रकाशमान तेज अकेला ही धारण करता था। उसके तीन नेत्र थे, जो तीन सूर्यों के समान दिखायी देते थे .....। उसके पाँच मुख, दस भुजाएँ और प्रत्येक मुख में तीन-तीन नेत्र थे। उसने अपने हाथ में एक त्रिशूल ले रखा था। उस अनन्त आकाश में उसका वह विशाल शरीर व्याप्त हो रहा था ..... मैंने उपरोक्त लक्षणों से पहचान लिया कि ये भगवान् रुद्र हैं। तब मैंने(वसिष्ठजी) दूर से ही उन परमेश्वर को नमस्कार किया।" (सं. योगवा. नि. प्र. उ. स. 80 पृ. 595-596)

उपरोक्त बातें सुनकर रामजी वसिष्ठजी से पूछते हैं "मुने! रुद्रदेव ने वैसा भंयकर रूप क्यों धारण किया था? वे काले और विशालकाय क्यों थे? उनके पाँच मुख कौन-कौन और कैसे हैं? वे कैसे और कौन सी दस भुजाएँ धारण करके वहाँ उपस्थित हुए? उनके तीन नेत्र कौन-कौन से थे? वे अकेले क्यों थे? उनका वहाँ प्रकट होने में क्या प्रयोजन था? वे किससे प्रेरित होकर आये थे? उन्होंने वहाँ क्या किया था? और उनकी छाया कौन थी? ये सब बातें मुझे बताइये।" (वही पृ. 596)

इन प्रश्नों के उत्तर द्वारा वसिष्ठजी ने शिवतत्त्व का स्वरूप रामजी को समझाया। वे कहते हैं- "परमेश्वर वहाँ अंहकार के अभिमानीरूप से रुद्रनामधारी होकर प्रकट हुए थे। उस समय उनकी

जो मूर्ति दिखायी दी थी, वह निर्मल आकाशरूपी ही थी। वे महातेजस्वी भगवान् रुद्र आकाशरूपधारी होने के कारण आकाश के समान ही श्यामवर्ण से युक्त दिखायी देते थे। चेतनाकाशमात्र ही उनका सारभूत स्वरूप है, इसलिये वे आकाशात्मा कहे गये हैं। सम्पूर्ण भूतों के आत्मा और सर्वव्यापी होने के कारण ही वे विशालकाय बताये गये हैं। उन अंहकाररूपी रुद्र की प्रत्येक शरीर से सम्बन्ध रखनेवाली जो पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं, उन्हीं को ज्ञानी पुरुष उन रुद्रदेव के पाँच मुख बताते हैं। इसीलिये ज्ञानेन्द्रियाँ सब ओर से प्रकाशस्वभाव कही गयी हैं। पाँच कर्मेन्द्रियाँ तथा उनके पाँच विषय–ये दस क्रमशः उनके दाहिनी एवं बायीं भुजाएँ हैं। उस प्रलयकाल में सम्पूर्ण भूतों से परित्यक्त होकर आकाशमात्र रूपधारी वे रुद्रदेव एक क्षणतक वहाँ सबको विक्षुब्ध करते हुए–से स्थित रहते हैं। फिर कारणभूत अंहकार–शरीर से रहित हो परमशान्त हो जाते हैं। सत्त्व, रज और तम–ये तीन गुण; भूत, भविष्य और वर्तमान–ये तीन काल; चित्त, अहंकार और बुद्धि– ये त्रिविध अंतःकरण; अ, उ और म्– ये प्रणव के तीन अक्षर तथा ऋक्, साम और यजुष्–ये तीन वेद ही उन भगवान् रुद्रदेव के नेत्ररूप से स्थित हैं। उन्होंने अपनी मुट्ठी में त्रिलोकीरूप त्रिशूल को धारण कर रखा है। उस समय समस्त भूतगणों में भी उनके सिवा दूसरा कोई स्थित नहीं था। इसलिये वे वहाँ अहंकारात्मक रुद्र के रूप में देहाभिमानी–से होकर खड़े थे । . ..... अंहकारस्वरूप भगवान् रुद्र ही कल्पपर्यन्त बड़वानल होकर समुद्र में निवास करते हैं और उसका जल पीते रहते हैं। किन्तु प्रलयकाल में वे सारे समुद्र को ही पी जाते हैं .....।" (योगवा. नि. प्र. उ. सर्ग 80/19–29, 35)

वसिष्ठजी पुनः कहते हैं– "रघुनन्दन! तदनन्तर उस समय उस महाकाश में मैंने देखा, भगवान् रुद्र मत्त–से होकर अकाण्ड ताण्डव में प्रवृत्त हो रहे हैं। उनकी आकृति बहुत दूरतक फैली हुई थी ..... इसके बाद मुझे दिखायी दिया कि उनके शरीर से छाया–सी निकल रही है, जो ताण्डव–नृत्य में उनका अनुकरण एवं अनुसरण करनेवाली है। उस समय मेरे मन में यह प्रश्न उठा कि बारह सूर्यों के विद्यमान न रहने पर जब आकाश में महान् अन्धकार छा रहा है, तब यह छाया कैसे स्थित हुई है? मैं इस प्रकार विचार कर ही रहा था कि वह तत्काल नृत्य करती हुई शीघ्रतापूर्वक उनके आगे जाकर खड़ी हो गयी। उसका शरीर भी बहुत विस्तृत था तथा वह भी अपने तीन नेत्रों से सुशोभित हो रही थी। उसका रंग घोर काला था। वह बहुत ही दुर्बल थी। ..... वह जरा से जर्जर हो रही थी। ..... ब्रह्माण्डरूपी घुँघुरुओं से बनी हुई विशाल माला उसके कटिभाग में करधनी का काम दे रही थी। शिखर, वन और नगररूपी पुष्प–गुच्छों से युक्त तथा पुराने नगर, वन, द्वीप और ग्रामरूपी कोमल पल्लवों से अलंकृत सातों कुलपर्वत उस भगवती काली के गले की पुष्प मालाएँ बने हुए थे।" (सं. योगवा. नि. प्र. उ. सर्ग 81 पृ. 597–98)

प्रलयकाल के उपरोक्त वर्णन को सुनकर भगवान् राम पुनः प्रश्न करते हैं कि जब प्रलयकाल में सब कुछ नष्ट हो गया, तब उस देवी कालरात्रि के शरीर में शिखर, वन, नगर आदि वस्तुओं की

स्थिति क्यों और कैसे सम्भव है? निर्वाण को प्राप्त हुआ जगत् किस प्रकार काली के शरीर के माध्यम से नाचने लगा?

उपरोक्त प्रलय के वर्णन का दार्शनिक या आध्यात्मिक अर्थ समझाते हुए वसिष्ठजी श्रीराम से कहते हैं- "वास्तव में न वहाँ पुरुष था न वहाँ स्त्री थी, न वह नृत्य हुआ न वे दोनों रुद्र और काली वैसे विशेषणों से युक्त ही थे। उनके आचार-व्यवहार भी वैसे नहीं थे और उनकी वे आकृतियाँ भी नहीं थीं। जो कारणों का भी परम कारण है, वह अनादि, चिन्मय आकाशस्वरूप, अनन्त, शान्त, प्रकाशस्वरूप, अविनाशी, सर्वव्यापी, सच्चिदानन्दघन, शिवस्वरूप साक्षात् ब्रह्म ही भैरव(रुद्र) के आकार में दिखायी देता था। जगत् का नाश हो जानेपर उस रुद्रदेव के रूप में स्थित हुआ वह चेतनाकाशरूप परमात्मा ही था। चेतन होने के कारण वह परमात्मा अपने चैतन्यस्वभाव वैभव को छोड़कर नहीं रह सकता। जैसे सुवर्ण कटक-कुण्डल आदि के रूप में ही अवस्थित होता है, वह उन आकृतियों का सर्वथा त्याग करके नहीं रहता, उसी प्रकार परमात्मा भी लीला के लिये उमा, महेश्वर आदि सगुणरूप धारण करता है। वह अपने लीला-स्वभाव को सर्वथा छोड़ नहीं सकता। .....मैंने जिस चिन्मय परमाकाश का वर्णन किया है, वह परमात्मा ही शिव कहा गया है। यह सनातन पुरुष है। यही विष्णुरूप से स्थित होता है और यही पितामह ब्रह्मा है। यही चन्द्रमा, सूर्य, इन्द्र, ... है। यही भूत, भविष्य, और वर्तमान काल है। जो वस्तु है और जो नहीं है, वह सब परमाकाशरूप परमात्मा ही है।" (संक्षिप्त योगवा. नि. प्र. उ. सर्ग 82-83 पृ. 599-600)

वसिष्ठजी आगे कहते है- "मैंने जिस चिन्मय परमाकाशस्वरूप परमात्मा का वर्णन किया है, वही श्रुतियों में शिव कहा गया है और वही प्रलयकाल में रुद्र होकर नृत्य करता है। ..... उस रुद्रदेव की जो आकृति बतायी गयी है, वह वास्तव में उसकी आकृति नहीं है। उस समय सच्चिदानन्दघनरूप आकाश ही उस आकार में स्फुरित होता है। तत्त्वदृष्टि से मैंने वह आकृति उस समय शान्त चेतनाकाशरूप ही देखी। मैंने ही उसे यथावत्रूप से जाना। दूसरा कोई पुरुष जो तत्त्वदृष्टि से रहित है उसे उस रूप में नहीं देखता है। जैसे सुवर्ण ही विभिन्न आकृतियों से सुशोभित होने वाले कटक-कुण्डल आदि अलंकारों के रूप में स्थित होता है, वैसे ही सत्स्वरूप चेतन ब्रह्म ही अपने स्वभाव से रुद्ररूप धारण करके विराजमान होता है। जो चिद्घन परमात्मा का स्पन्द है, वही भगवान् शिव का स्पन्द(स्फुरण) है। वही हम लोगों के सामने वासनावश नृत्यरूप में प्रकाशित होता है। अतः प्रलयकाल में वे भगवान् शिव भंयकर आकृतिवाले रुद्र होकर जो वेगपूर्वक नृत्य करते हैं, उसे सच्चिदानन्दघन परमात्मा का अपना सहज विलास(लीला) ही समझना चाहिये।"(योगवा. निर्वा. प्रक. उ. सर्ग 83/ 1-4, 17-18)

चिन्मात्रपरमाकाश एष यः कथितो मया
एषोऽसौ शिव इत्युक्तस्तदा रुद्रः प्रनृत्यति।।
यासौ तस्याकृतिर्नासावाकृतिः कृतिनां वर।

तच्चिन्मात्रघनं व्योम तथा कचति तादृशम्।।
मया दृष्टा तदाकाशमेव शान्तं तदाकृतिः।
मयेव तत्परिज्ञातं नान्यः पश्यति तत्तथा।।
यथा नाम स कल्पान्तः स रुद्रः सा च भैरवी।
मायामात्रं तथा सर्वं परिज्ञातमलं मया।।
यः स्पन्दश्चिद्घनस्यास्य शिवस्यास्य स एव नः।
स्ववासनावेशवशात्स्वयमेव विराजते।।
अतः स कल्पान्तशिवो रुद्रो रौद्राकृतिर्द्रुतम्।
यन्नृत्यति हि तद्विद्धि चिद्घनस्पन्दनं निजम्।।

(योगवा. निर्वा. प्र. उत्त. 83/1-4, 17-18)

शिव और शक्ति के स्वरूप को समझाते हुए योगवासिष्ठ में कहा गया है कि "स्पन्दन या मायाशक्ति के द्वारा ही शिव लक्षित होते हैं(या जाने जाते हैं), अन्यथा नहीं। शिव को ब्रह्म ही समझना चाहिये, उस शान्तस्वरूप शिव का वर्णन बड़े-बड़े वाणी-विशारद विद्वान् भी नहीं कर सकते। मायामयी जो स्पन्दनशक्ति है, वही ब्रह्मस्वरूप शिव की इच्छा कही जाती है। वह इच्छा इस दृश्याभासरूप जगत् का उसी तरह विस्तार करती है, जैसे साकार पुरुष की इच्छा काल्पनिक नगर का निर्माण करती है। इस प्रकार शिव की इच्छा ही कार्य करती है। निराकार ब्रह्म-शिव की वह मायामयी स्पन्दनशक्तिरूपा इच्छा ही इस सम्पूर्ण दृश्यजगत् का निर्माण किया करती है।" (योग निर्वा. प्र. उ. सर्ग 84/5-7)

तत्स्पन्दमायाशक्त्यैव लक्ष्यते नान्यथा किल।
शिवं ब्रह्म विदुः शान्तमवाच्यं वाग्विदामपि।।
स्पन्दशक्तिस्तदिच्छेदं दृश्याभासं तनोति सा।
साकारस्य नरस्येच्छा यथा वै कल्पनापुरम्।।
करोत्येव शिवस्येच्छा करोतीदमनाकृतेः। (योगवा. निर्वा. प्र. उत्त. 84/5-7)

पुनः "जैसे वायु की गति या चेष्टा वायु से भिन्न नहीं है, वैसे ही शिवस्वरूप परमात्मा की इच्छा-स्वरूपा वह कालरात्रि(काली) उससे भिन्न नहीं है। जैसे वायु के भीतर की चेष्टा वायुरूप ही है, वैसे ही शिव की इच्छा शिव के स्वरूप से भिन्न नहीं है, अतएव शिवरूप ही है। इसलिये वह अनिच्छा ही है। इस दृष्टि से शिव में इच्छा का अभाव है। ....." (योगवा. नि. प्र. उ. 85/5 आदि)

"वह शिवा परमेश्वर शिव की इच्छारूपा प्रकृति कही गयी है। वही जगन्माया के नाम से विख्यात है। वह परमेश्वर शिव की स्वाभाविक स्पन्द-शक्ति है। वे परमेश्वर प्रकृति से परे पुरुष कहे गये हैं। ..... वे शिवरूप-धारी शान्त परमात्मा शरत्काल के आकाश की भाँति निर्मल एवं परम

शान्तिमान् हैं।"

सा राम प्रकृतिः प्रोक्ता शिवेच्छा पारमेश्वरी।
जगन्मायेति विख्याता स्पन्दशक्तिरकृत्रिमा।।
स परः प्रकृतेः प्रोक्तः पुरुषः पवनाकृतिः।
शिवरूपधरः शान्तः शरदाकाशशान्तिमान्।।

(योगवा. निर्वा. प्र. उत्त. 85/14-15)

यह चिति देवी (इच्छारूपा प्रकृति) जब शिव का स्पर्श करती है, तब पूर्णतः शिवस्वरूप ही हो जाती है। जैसे नदी समुद्र का स्पर्श करते ही अपने नाम और रूप को त्यागकर उसके भीतर समा जाती है, वैसे ही प्रकृति पुरुष का स्पर्श प्राप्त करते ही उसके भीतर एकता को प्राप्त हो अपनी प्रकृति-रूपता का परित्याग कर देती है। उस समय प्रकृति चिति-निर्वाण-रूप परम पद को प्राप्त हो तद्रूप बन जाती है, जैसे नदी समुद्र में मिलकर समुद्ररूप हो जाती है।" (योगवा. निर्वा. प्र. उ. सर्ग 85/18-19)

उपरोक्त संदर्भों में शिव को परब्रह्म स्वीकार किया गया है, वही रुद्ररूप से सृष्टि का संहार करते हैं तथा प्रलय हो जाने के बाद अपनी माया, शक्ति अथवा इच्छा, को समेटकर आत्मस्थ हो सदाशिवरूप धारण कर लेते हैं। जब वे अपनी अद्वैत निराकर सदाशिव अवस्था में सृष्टि का संकल्प करते हैं तो उनकी शक्ति माया(उमा) सृष्टि की रचना कर देती है और वही शिव द्वैत रूप धारण कर लेता है। फलस्वरूप ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र आदि सहित समग्र सृष्टि का प्रादुर्भाव होता है। अतः कहा जा सकता है कि तीनों प्रमुख देव तात्त्विक दृष्टि से एक ही तत्त्व की पृथक-पृथक अभिव्यक्तियाँ हैं। द्वैत की अवस्था में शिव एवं शक्ति का अलगाव रहता है परन्तु प्रलय के समय पुनः अद्वैत स्थिति प्राप्त हो जाती है उस समय शिव और शक्ति में कोई भेद नहीं रह जाता। फलस्वरूप आत्मस्थ सदाशिव इच्छा रहित या मायातीत होता है। अतः भगवान् शिव या उमापति को देव-देवेश(सं. योग. नि. प्र. पू. सर्ग 115, पृ. 498) तथा त्रिभुवन का अधिपति (सं. योग वा. नि. प्र. पू. सर्ग 42, पृ. 409) कहा गया है।

मानस-शिवपूजा

भगवान् शंकर ने कैलास पर्वत की कन्दरा में वसिष्ठजी को जन्म-मरणरूप दुःख की शान्ति तथा अज्ञान के नाश के लिये मानस-शिवपूजा की विधि समझायी थी।

भगवान् शिव से वसिष्ठजी पूछते हैं कि "देवेश! ..... वह देवार्चन-विधान किस तरह का है, जो उद्वेग का नाशक, विकाररहित, समस्त पापों का विनाशकारी तथा समस्त कल्याणों का अभिवर्धक है? ....."

बूहि प्रसन्नया बुद्ध्या त्यक्तोद्वेगमनामयम्।
सर्वपापक्षयकरं सर्वकल्याणवर्धनम्।।
देवार्चनविधानं तत्कीदृशं भवति प्रभो।। (योगवा. निर्वा. प्र. पू. 29/115-116)

महादेवजी उत्तर में कहते हैं "मैं तुमसे सर्वश्रेष्ठ वह देवार्चन का विधान कहता हूँ, जिसका अनुष्ठान करने से तत्काल मनुष्य मुक्त हो जाता है। ..... इस विषय का तात्त्विक ज्ञान रखनेवाले विद्वान् कहते हैं कि एकमात्र निर्गुण निराकार विज्ञानानन्दघन विशुद्ध परमात्मा शिव ही पूज्य है और उसकी पूजन-सामग्री में ज्ञान, समता और शान्ति-ये सबसे श्रेष्ठ पुष्प हैं। महर्षे! ज्ञानस्वरूप परमात्मदेव की ज्ञान, समता और शान्तिरूप पुष्पों से जो पूजा की जाती है, उसी को आप वास्तविक देवार्चन जानिये। परमात्मा ही विज्ञानस्वरूप देव, भगवान् शिव और परम कारणस्वरूप है। अत: ज्ञानरूप पूजन-सामग्री से उसी की सदा-सर्वदा पूजा करनी चाहिये।

शृणु ब्रह्मविदां श्रेष्ठ देवार्चनमनुत्तमम्।
वदामि मुच्यते येन कृतेन सकृदेव हि।।
शिवं चिन्मात्रममलं पूज्यं पूज्यविदो विदुः।
शमबोधादिभिः पुष्पैर्देव आत्मा यदर्च्यते।
आत्मैव देवो भगवाञ्छिवः परमकाणम्।
ज्ञानार्चनेनाविरतं पूजनीयः स सर्वदा।।

(योगवा. निर्वा. प्र. पू. 29/117, 127, 131)

वह सच्चिदानन्द कल्याणस्वरूप शिव समस्त गुणों से अतीत और सम्पूर्ण संकल्पों से रहित है। मुने ! देश और काल आदि परिच्छेदों से रहित, समस्त संसार का प्रकाश करनेवाला विशुद्ध सच्चिदानन्द परमात्मा ही देव कहा जाता है। वही परब्रह्म परमात्मा 'ॐ', 'तत्', 'सत्'-इन नामों से कहा गया है। .....चिन्मय परमात्मा ने ही गदा, चक्र आदि आयुधों से युक्त चतुर्भुज विष्णुरूप से समस्त असुर-समूह का विनाश किया था। चेतन परमात्मा ने ही वृषभ और चन्द्रमा के चिन्हों से युक्त त्रिनेत्र रूप धारण कर गौरी को प्राप्त किया है। चेतन परमात्मा ही भगवान् विष्णु के नाभी-कमल में भ्रमर के समान ध्यान में तल्लीन ब्रह्माजी का रूप धारण करता है ..... सच्चिदानन्दघन ब्रह्म ही नारायण होकर समुद्र में शयन करता है, ब्रह्मा होकर ब्रह्मलोक में ध्यान में स्थित रहता है, हिमालय पर्वत पर पार्वती के सहित महादेवजी का रूप धारण कर निवास करता है और बैकुण्ठ में विष्णु का रूप धारण कर रहता है। वह परमात्मा सूर्य बनकर दिन का निर्माण करता है (आदि-आदि) .....। (योगवा. निर्वाण प्र. पू. सर्ग 30/11-12, 37-39, 93-94)

शिवः सर्वपदातीतः सर्वसंकल्पनातिगः।
सर्वसंकल्पवलितो न सर्वो न च सर्वकः।।
दिक्कालाद्यनवच्छिन्नः सर्वारम्भप्रकाशकृत्।
चिन्मात्रमूर्तिरमलो देव इत्युच्यते मुने।। (योगवा. निर्वा. प्र. पू. 30/11-12)

उपरोक्त ज्ञान-दृष्टि, कि सम्पूर्ण विश्व उस सदाशिव का ही रूप है, तात्त्विक दृष्टि से ब्रह्मा,

विष्णु, महेश, सूर्य आदि सभी देवता एवं आत्माएँ एक ही शिव के विविध रूप हैं, से समस्त व्यवहार करना ज्ञान द्वारा परमात्मा शिव की पूजा कही जाती है। व्यवहार में सभी स्थितियों(सुख-दुख, लाभ-हानि, मान-अपमान, जय-पराजय आदि-आदि) में मानसिकरूप से सम या उद्वेगरहित रहना, यह ब्रह्म की समतारूपी पूजा कही जाती है। सदैव अपने आप को मानसिक स्तर पर शान्त बनाये रखना यह भगवान् शिव की शान्तिरूप पूजा है। वसिष्ठजी ने शिव-मानसपूजा के इन तीन तत्त्वों का उपदेश भगवान् शिव से प्राप्त किया था।

जैसा यह पहले ही बताया जा चुका है कि योगवासिष्ठ ज्ञान-प्रधान ग्रन्थ है अतः इसमें केवल मानस-पूजा, योग, ध्यान आदि का ही मोक्ष के साधन के रूप में वर्णन किया गया है।

(4) अन्य रामायण

अन्य प्रचलित रामायणों में अध्यात्मरामायण तथा अद्भुत रामायण मुख्य हैं। अध्यात्मरामायण को ब्रह्माण्डपुराण के उत्तरखण्ड का अंश माना जाता है[1] जबकि अद्भुत रामायण को धार्मिक परम्परा में महर्षि बाल्मीकि की रचना मानी जाती है। यहाँ हम इन दोनों के आधार पर शिव माहात्म्य का वर्णन करेंगे।

अध्यात्मरामायण एवं अद्भुत रामायण में भगवान् शिव से संबंधित संदर्भ बहुत ही कम मिलते हैं परन्तु जो मिलते हैं वे शिव की गरिमा के संबंध में महत्त्वपूर्ण संकेत देते हैं।

अध्यात्मरामायण के प्रारंभ में उसके माहात्म्य की चर्चा की गयी है। चर्चा शुरू करने से पहले कहा गया है-

अप्रमेयत्रयातीतनिर्मलज्ञानमूर्तये।
मनोगिरां विदूराय दक्षिणामूर्तये नमः।। (अ. रा. माहा. श्लोक-1)

"जो प्रत्यक्षादि प्रमाणों से परे, त्रिगुणातीत, मलहीन अर्थात् निर्मल, ज्ञानस्वरूप और मन, वाणी आदि से अगम्य या परे हैं, उन दक्षिणामूर्ति भगवान्(सदाशिव) को नमस्कार है।"

इस एक ही श्लोक में भगवान् सदाशिव की सभी विशेषताओं को बतला दिया गया है जिनका विस्तृत वर्णन रामचरितमानस में किया गया है। इन सभी विशेषताओं से युक्त तो केवल ब्रह्म ही हो सकता है।

अरण्यकाण्ड(2/30) में सुतीक्ष्णजी ने राम की स्तुति करते हुए उन्हें विष्णु, ब्रह्मा एवं शिव से अभिन्न या एकरूप बताया है। यहाँ पर राम के तात्त्विक स्वरूप को ध्यान में रखकर प्रार्थना की गयी है।

युद्धकाण्ड(4/1-4) में महादेवजी पार्वती से कहते हैं कि सेतुबन्ध के आरम्भ होनेपर भगवान् राम ने रामेश्वर महादेव की स्थापना कर उनका पूजन करते हुए लोकहित के लिये इस प्रकार कहा। जो पुरुष रामेश्वर शिव का दर्शन कर सेतुबन्ध को प्रणाम करेगा वह मेरी कृपा से ब्रह्महत्या आदि

1. वर्त्तमान में उपलब्ध बह्माण्ड पुराण की प्रतियों में अध्यात्मरामायण उपलब्ध नहीं होता।

पापों से मुक्त हो जायगा। यदि कोई पुरुष सेतुबन्ध में स्नानकर रामेश्वर महादेव के दर्शन करे और फिर संकल्पपूर्वक काशी जाकर वहाँ से गंगाजल लावे तथा उससे रामेश्वर का अभिषेक कर उस जल के पात्र को समुद्र में डाल दे तो वह निःसन्देह ब्रह्म को (अर्थात् मोक्ष को) प्राप्त कर लेता है।

सेतुमारभमाणस्तु तत्र रामेश्वरं शिवम्।
संस्थाप्य पूजयित्वाह रामो लोकहिताय च।।
प्रणमेत्सेतुबन्धं यो दृष्ट्वा रामेश्वरं शिवम्।
ब्रह्महत्यादिपापेम्यो मुच्यते मदनुग्रहात्।।
सेतुबन्धे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा रामेश्वरं हरम्।
सङ्कल्पनियतो भूत्वा गत्वा वाराणासीं नरः।।
आनीय गङ्गासलिलं रामेशमभिषिच्य च।
समुद्रे क्षिप्ततद्भारो ब्रह्म प्राप्नोत्यसंशयम्।।

(अध्यात्मरामायण, युद्धकाण्ड 4/1-4)

पुनः युद्धकाण्ड (14/5-6) में रावण को मारकर वापस लौटते समय रघुनाथजी ने सीताजी से कहा है-

"देखो, इस विशाल समुद्रपर यह सेतुबन्ध नाम से विख्यात तीर्थ दिखायी देता है, जो तीनों लोकों से पूजनीय है। यह अत्यन्त पवित्र है और दर्शनमात्र से ही सम्पूर्ण पापों को नष्ट करनेवाला है। यहाँ मैंने श्रीरामेश्वर महादेव की स्थापना की है।"

अध्यात्मरामायण के उत्तरकाण्ड (4/26-27) में उल्लेख है कि-

लोकानामुपदेशार्थं परमात्मा रघूत्तमः।
कोटिशः स्थापयामास शिवलिङ्गानि सवर्शः।। (उ. का. 4/26-27)

अर्थात्-भगवान् राम ने लोगों को उपदेश देने के लिये जगह-जगह करोड़ों शिवलिंग स्थापित किये।

एक स्थल पर (माहात्म्य/50) यह भी बताया गया है कि पूर्वकाल में सहस्त्रार्जुन के वध की इच्छा से परशुरामजी धनुर्विद्या का अभ्यास करने के लिये महादेवजी के पास रहते थे। परशुराम, जो अद्वितीय धनुर्धर थे, उन्होंने भगवान् शिव से ही धनुर्वेद को सीखा था।

पुनः युद्धकाण्ड (16/35) में कहा गया है कि यह रामायण पूर्वकाल में महादेवजी ने पार्वती को सुनाया था। भगवान् शिव को सभी विद्याओं का आचार्य (अन्य ग्रन्थों में) स्वीकार किया गया है। इसका संकेत भी हमें उपरोक्त दोनों संदर्भों से प्राप्त होता है। पहले सन्दर्भ में धनुर्वेद के आचार्य एवं दूसरे में रामायण के आचार्य बताये गये हैं।

उपरोक्त संदर्भों में भगवान् शिव एवं उनके तीर्थ रामेश्वर एवं काशी की महत्ता झलकती है।

यहाँ शिव की लिंगपूजा का भी स्पष्ट संकेत प्राप्त होता है। साथ ही भगवान् राम एवं शिव के घनिष्ठ संबंध पर भी प्रकाश पड़ता है। अर्थात् वे दोनों तत्त्वतः एक ही हैं।

अद्भुत रामायण के अन्तर्गत भी भगवान् शिव के बहुत ही कम संदर्भ मिलते हैं। दूसरे सर्ग (5, 6 तथा 22 वें श्लोक) में भगवान् विष्णु, ब्रह्मा एवं शिव की तात्त्विक एकरूपता को बताया गया है।

पुनः (2/41, 42) में अम्बरीष को भगवान् विष्णु वर देते समय कह रहे हैं कि सुदर्शन-चक्र जिसे पहले हमने रुद्र के प्रभाव से प्राप्त किया है, वह तुम्हारी ऋषि के शाप, दुःख, शत्रु, रोग आदि से रक्षा करेगा। इस सन्दर्भ से यह स्पष्ट होता है कि भगवान् शिव ने ही भगवान् विष्णु को सुदर्शन चक्र प्रदान किया था तथा उस चक्र में उपरोक्त विशेषतायें थी। अनेक पुराणों (जैसे ब्रह्मपु. 109/2, लिंग पुरा. 1/65/16-17 तथा 1/अध्याय 98 तथा शिव पुराण कोटिरुद्र संहिता अध्याय 34-36) में ऐसी कथा आती है जिसमें भगवान् विष्णु ने शिवजी की उपासना से सुदर्शन चक्र को प्राप्त किया था। विस्तृत वर्णन के लिये 'शिव पुराण' तथा 'लिंग पुराण' से संबंधित अध्यायों को देखें।

उपसंहार

यद्यपि रामायण राम-भक्ति प्रतिपादक वैष्णव ग्रन्थ है, तथापि जहाँ-जहाँ भगवान् शिव का प्रसंग आया है वहाँ शिव को ही सर्वश्रेष्ठ माना गया है। बा. रामायण, रामचरितमानस, वसिष्ठरामायण, अध्यात्मरामायण आदि में भगवान् शिव को प्रत्यक्षादि प्रमाणों से परे, त्रिगुणातीत, निर्मल, ज्ञान-स्वरूप, जगत्स्रष्टा तथा संहारकर्त्ता, सबलोकों का आधार, परमगुरु, अजन्मा, अव्यक्त रूपधारी, आराध्य देव, वरदाता, आशुतोष, दयानिधि, देव-दानव-मनुष्य आदि सबके आराध्य, भावी या भाग्य को मिटा देनेवाले, शरणागत के दुःखों का नाश करनेवाले, मोक्षस्वरूप, विभु, ब्रह्म, वेदस्वरूप, सबके स्वामी, माया से रहित, भेदरहित, इच्छारहित, दिगम्बर, ओंकार के मूल, कैलासपति, महाकाल के भी काल, गंगाधारी, करोड़ों सूर्य के समान प्रकाशवाले, तीनों प्रकार के दुःखों को दूर करनेवाले, सच्चिदानन्दघन, मोह को हरनेवाले, समस्त जीवों के हृदय में निवास करनेवाले तथा कलि के मल को दूर करनेवाले माना गया है।

भगवान् शिव के सगुण एवं निर्गुण दोनों रूपों का विवेचन रामायण ग्रन्थों में मिलता है। लिंग-पूजा का उल्लेख भी मिलता है। रामेश्वर लिंग के अलावे भी भगवान् राम ने करोड़ों लिगों को भूतल पर स्थापित किया है-ऐसा अध्यात्मरामायण में कहा गया है। रामायणों में काशी को मोक्षपुरी कहा गया है। रामचरितमानस में अनेकों जगह यह कहा गया है कि बिना शिव की भक्ति एवं कृपा के भगवान् राम की भक्ति नहीं प्राप्त हो सकती। शिवद्रोही कल्पभर नरक में वास करता है तथा वह मेढक (दादुर) की योनि प्राप्त करता है। भगवान् शिव की उपासना से न केवल राम की भक्ति अपितु किसी भी देव की भक्ति प्राप्त हो सकती है क्योंकि वे सर्वदेवमय हैं। मानस में कहा गया है कि बिना शिव-आराधना के अभीष्ट फल की प्राप्ति करोड़ों योग और जप के साधने से नहीं हो सकती।

मानस एवं अन्य सभी रामायणों में ब्रह्मा, विष्णु, एवं शिव की तात्त्विक एकता का प्रतिपादन किया गया है। निर्गुणरूप में ये तीनों एक ही हैं। निर्गुणरूप को योगवासिष्ठ में सदाशिव कहा गया है। परन्तु सगुण रूप में ये तीनों भिन्न हैं। रामायण ग्रन्थों में ब्रह्मा को विष्णु एवं शिव की अपेक्षा कम महत्त्व दिया गया है। जहाँतक भगवान् शिव एवं राम के संबंधों का सवाल है, मानस में तीन तरह के लौकिक संबंधों–स्वामी, सेवक एवं सखा–का कथन किया गया है। भगवान् शिव भगवान् राम के कभी स्वामी, तो कभी सेवकरूप में आते हैं तो कभी सखारूप में। वास्तव में तात्त्विक दृष्टि से इन दोनों में अनन्यता है परन्तु भगवान् शिव एवं राम की सगुण लीला में अन्तर है। भगवान् राम थोड़े समय के लिये धरती पर रहते हैं जबकि भगवान् शिव अविनाशीरूप से स्थित हैं। अत: राम की अपेक्षा शिव की सगुण लीला ज्यादा दिव्य लगती है।

अद्भुत रामायण में भगवान् विष्णु को भगवान् शिव से सुदर्शनचक्र की प्राप्ति का उल्लेख है। सगुण एवं निर्गुण दोनों में से सगुण उपासना को रामायणों में सरल साधन बताया गया है। निर्गुण उपासना की चर्चा योगवासिष्ठ में ज्यादा की गयी है जबकि मानस में भक्तिमार्ग की या सगुणोंपासना की। भगवान् शिव की उपासना से देव–दानव–मनुष्य सभी लाभ उठाते रहे हैं जबकि भगवान् विष्णु की उपासना (कुछ अपवादों को छोड़कर) सामान्यत: दानवों द्वारा नहीं की जाती क्योंकि भगवान् विष्णु को दानव अपना विरोधी मानते रहे हैं। अत: भगवान् शिव ही सबके उपास्य सिद्ध होते हैं। वे आशुतोष होने के कारण शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं तथा वे ऐसे भी वरदान दे डालते हैं जो अन्य किसी भी देव को देना सम्भव नहीं है। वे अपनी दया दिखाते समय कुछ भी विचार नहीं करते। वे अपना सब कुछ दे सकते हैं। इसीलिये मानस में तुलसीदास कहते हैं–

जरत सकल सुर बृंद विषम गरल जेहिं पान किय।
तेहि न भजसि मन मंद को कृपाल संकर सरिस।।

(किष्किन्धा काण्ड प्रथम सोरठा)

(यह लेख गीताप्रेस गोरखपुर द्वारा प्रकाशित श्रीमद्बाल्मीकीय रामायण सातवां संस्करण, रामचरितमानस 26वाँ संस्करण, अध्यात्मरामायण 18वाँ संस्करण तथा कल्याण का संक्षिप्त योगवासिष्ठ अंक दूसरा संस्करण, वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई द्वारा 1995 में प्रकाशित अद्भुत रामायण तथा मुन्शीराम मनोहरलाल पब्लिशर्स द्वारा 1981 में दो खण्डों में प्रकाशित योगवासिष्ठ: पर आधारित है।)

S S S S S S S S